वर्ष ३] राष्ट्र-जागृति-माला पुस्तक [६

जब अंग्रेज़ नहीं आये थे

(श्री दादाभाई नौरोजी लिखित 'Poverty and Unbritish rule in India' नामक ग्रंथ के 'India Reform Society' अंश का हिंदी अनुवाद)

अनुवादक

शिवचरणलाल 'शर्मा'

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-मंडल

अजमेर

प्रथमावृत्ति २१००] १९२८ [मूल्य ।)

प्रकाशक
जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

खर्चा जो लगा है

कागज़	११०)
छपाई	१०५)
बाइंडिंग	१५)
लिखाई	६०)
	२९०)
व्यवस्था, विज्ञापन, आदि खर्च	२२०)
	५१०)

कुल प्रतियाँ २१००

लागत मूल्य प्रति कापी ।)

खर्चा जो पुस्तक पर लगाया गया

प्रेस का बिल व लिखाई	२९०)
व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	१००)
	३९०)

एक प्रति का मूल्य ≡)

इस प्रकार इस पुस्तक में फी प्रति -) और कुल १२०) की घटी उठाई गई है।

मुद्रक
जीतमल लूणिया,
सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर

प्राक्कथन ।

जब अंगरेज नहीं आये थे, भारतवर्ष कितना हरा भरा सम्पन्न और समृद्ध देश था. उसके स्मरण मात्र से आज के भारतवर्ष की दुःखद अवस्था देखकर रोना ही आता है। इसकी वह विपुल सम्पत्ति कहाँ गई ? इसका वह वैभव कहाँ गया ! एक समय था, जब इस देश की सौम्य शीतल छाया के लिए अन्य देश के निवासी तरसते थे, इसकी सम्पत्ति और वैभव को देखकर आश्चर्य्य चकित होते थे। आज वही देश प्रखर पराधीनता के ताप में तड़फ रहा है, गैरों के पैरों तले रौंदा जा रहा है। इस देश के लाखों प्राणी भूखों मरते [illegible] को एक समय भी भर पेट भोजन मयस्सर नहीं होता ! इस देश की यह दशा क्यों हुई और किसने की ? इस छोटी सी पुस्तिका का यही विषय है। जिन्होंने इस देश को इस अधोगति को पहुँचाया, उनकी उसी ज़माने की लेखनी का पुस्तिका में अक्षरश अनुवाद ही है। हमने अपनी तरफ़ से एक शब्द भी नहीं लिखा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जिन कुटिल और घृणित उपायों तथा नृशंस अत्याचारों द्वारा इस देश को हथिया लिया इसका रोमांचकारी विवरण एक पृथक पुस्तक का विषय है। इस पुस्तिका में तो अंग्रेजों के इस देश में आगमन तथा भारत के हितों के प्रति उनकी निन्दनीय और घृणित उदासीनता से इस देश की सम्पत्ति किस प्रकार शनैः शनैः विलीयमान हो गई यही बताया गया है।

ईस्ट इंडिया कम्पनी को इङ्गलण्ड के राजा द्वारा एक निश्चित अवधि तक भारतवर्ष मे व्यापार करने के लिए चार्टर मिला करता था। उस अवधि के समाप्त होते ही फिर दूसरा चार्टर दिया जाता था। नये चार्टर दिये जाने से पहले एक सरकारी कमेटी अवस्था की जांच किया करती थी और उसकी रिपोर्ट के अनुसार उसमें आवश्यक परिवर्त्तन कर दिया जाता था। इसी नियम के अनुसार सन् १८५३ में पार्लियामेंट के सदस्यों की एक कमेटी बैठी थी। उसने भारतवर्ष की अवस्था का अनुसंधान करके जो रिपोर्ट प्रकाशित की उसी का यह अक्षरशः अनुवाद मात्र है। स्व० दादा भाई नौरोजी की Poverty of India नामक पुस्तक से हमने इसका अनुवाद किया है।

अंग्रेजी शासन को इस देश में एक युग बीत गया। विदेशी शासकों को किसी विशाल देश पर शासन करने के लिए यह आवश्यक होता है कि वे वहां की जनता की मनोवृति को ही बदल दें। इसी नियम के अनुसार हमारे प्रभुओं ने हमारे इतिहास को बिगाड़ा और जनता को अन्धेरे में रखकर हर एक बात को इस प्रकार पेश किया, मानों इनके आगमन के पूर्व यहां प्रत्येक बात बिगड़ी हुई थी, यहां के निवासी असभ्य और जंगली थे, उन्हें भर पेट भोजन नहीं मिलता था, वे एक दूसरे से लड़ते थे, न यहां पर सड़के थीं, न व्यापार के लिए कोई सुविधा। सर्वत्र, अन्याय अनाचार, बेईमानी और लूट-खसोट का साम्राज्य था। यह सब देखकर ईश्वर को इस देश पर दया आई और उसने अंग्रेजों को यह हुक्म और अधिकार दिया

कि वे यहां आकर सुशासन और सुव्यवस्था स्थापित कर। इसी लिए उन्होंने यहां पधारने का कष्ट उठाकर इस देश पर असीम कृपा की। यहां आकर उन्होंने परस्पर लड़ने वाली हिन्दु और मुसलमान नाम की दो जातियों को एक दूसरे का गला काटने से रोका, सुशासन स्थापित किया, सड़कें, रेल, तार बनवाये और व्यापार तथा आवागमन की अनेक सुविधाएं कर दीं। परन्तु तनिक दृष्टिपात करने से पता चल जाता है कि यह सब झूठ है, धोखा है। सड़कें, रेल तार यह इस देश के लाभ के लिए नहीं, प्रत्युत इस देश को सदा अपने फोलादी पंजे में पकड़े रखने के लिए बनाये गये हैं। अगर इसके कारण जनता को भी सुविधा होगई है तो वह अनयास ही। वास्तव में इनसे भारतवासियों को नहीं, इङ्गलैण्ड के निवासियों को लाभ पहुँचा है, हमारे हित के लिए बनाई गई तलवार ने हमारा रक्त शोषण किया है। यह बात आज निर्विवाद सिद्ध है कि अंग्रेजों ने यहां के व्यापार को नष्ट कर अपने देश के व्यापार को बढ़ाया; हथियार छीनकर इस देश को नपुंसक बना दिया, और शासन के प्रत्येक विभाग को अपने हाथ में शनैः शनैः लेकर हमें बिलकुल परावलम्बी बना दिया। यहां के व्यापार को नष्ट करने तथा यहां से अपने देश को धन ढोने की अंग्रेजों की नीति जैसी पहले थी वैसी ही आज भी है। अन्तर केवल इतना है कि पहले उनके ढंग बर-बरतापूर्ण थे, अब उन पर सभ्यता का नक़ाब चढ़ा दिया गया, जो कहीं अधिक घातक है। उदाहरण के लिए सन् १९२१ की सरकारी रिपोर्ट देखिए। उस समय सरकार द्वारा संचालित यानी सरकार के अधीन आठ रेलें थीं। इस सन में उनके

लिए उन्तीस करोड़ का वह विदेशी माल खरीदा गया जो यहीं पर मिल सकता था और देशी माल खरीदा गया सिर्फ सात करोड़ का। पिछले वर्ष ऐसैम्बली के सदस्यों ने रेलों के लिए देशी माल खरीदने की बात कही थी, जो सरकार ने नहीं मानी। सरकारी रिपोर्ट का कहना है कि आजकल रेलों के लिए ४० करोड़ का विदेशी तथा सिर्फ दस करोड़ का देशी माल खरीदा जाता है। दस करोड़ का यह देशी माल भी अधिकतर गोरे व्यापारियों द्वारा ही खरीदा जाता है। श्रीयुत करीमभाई ने औद्योगिक कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि "हमने सरकारी आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए सरकार के अति अनुरोध करने पर एक चमड़े का कारखाना खोला था। इस व्यवसाय में हानि की ही अधिक सम्भावना थी। इसी कारण दूसरे व्यापारी इस काम को करने को तैयार न थे। सरकार ने हमारे माल को भी खूब पसन्द किया था। लेकिन कुछ ही दिन बाद जब गोरों के चमड़े के कारखाने यहां खुल गये तो सरकार ने हमारा माल लेना बन्द कर दिया। इलाहाबाद में अति उत्तम डेरे तैयार होने पर भी सरकार ७० से ९० रुपये तक प्रति तम्बू अधिक देकर गोरे व्यापारियों से ही माल खरीदती है।" इस अभागे देश के गरीब मजूरों के पेट काटने की यह नीति ही इस देश की गरीबी और पतन का मुख्य कारण है। देशी उद्योग-धंधे नष्ट होने तथा देश के दरिद्र होने का रहस्य भी इसी निकृष्टतम नीति में है।

स्वदेशी के प्रचार को समूल नष्ट करने के लिए रेलवे के किराये में भी भारी अन्तर रक्खा है। विलायत का माल देश

के कोने कोने में पहुँच सके इस लिए बम्बई, करांची और कलकत्ता आदि बन्दरों से अन्य स्थानों को माल जाने का किराया बहुत ही कम है और यदि वही माल अन्य स्थानों से रवाना किया जाय तो किराया बहुत अधिक है। यहां से विलायत को जाने वाले कच्चे माल पर भी बम्बई, कलकत्ता और करांची आदि स्थानों के लिए रेल किराया बहुत कम रक्खा गया है। मुलतान से करांची ५७६ मील है, और दिल्ली ४५४। परन्तु किराया मुलतान से करांची के लिए एक रुपया नौ पाई है और दिल्ली के लिए एक रुपया तीन आना दो पाई प्रति मन! मुलतान और करांची के मार्ग में हैदराबाद है, पर मुलतान से हैदराबाद का भाड़ा करांची की अपेक्षा अधिक है। सात सौ मील दमोह से बम्बई का गेहूं का भाड़ा प्रतिमन ११ आने ९ पाई है, और दमोह से दिल्ली का जो केवल ४४५ मील ही है, उसी गेहूँ का भाड़ा ११ आना प्रतिमन है। कानपुर से कलकत्ते तक ६३३ मील का चमड़े का भाड़ा ५ आने तीन पाई फी मन, बम्बई का ८४० मील का ७ आने और दिल्ली से कलकत्ते ९०३ मील का ७ आने ६ पाई फी मन है। परन्तु भूगांव से कानपुर का १५९ मील का भाड़ा ५ आने ८ पाई फी मन दिल्ली से कानपुर का २७१ मील का ६ आने ४ पाई तथा जबलपुर से कानपुर का ३४८ मील का रेल भाड़ा प्रति मन ९ आना ८ पाई है! पाठक आश्चर्य्य करेंगे कि इङ्गलैण्ड के बन्दरों से ६००० मील का इस्पात का भाड़ा १८–२० रु० प्रति टन है और ऐंटवर्प से तो सिर्फ १४–१५ रु० ही है, परन्तु इधर टाटानगर से बम्बई १८–२० रु० और करांची तक ५० रु० प्रति टन है! बम्बई

से जापान रुई जाने का भाड़ा ८-९ रु० प्रति टन और लायलपुर से दिल्ली ३८७ मील का भाड़ा २८-३० रु० प्रति टन है। कलकत्ते की जूट मिलें गोरों के हाथ में हैं, इस लिए ई. बी. रेलवे हानि सहकर भी कम भाड़ा लेती है। ई. बी. रेलवे गोरे चाय वालों के लिए ही बनाई है। यह चाय पर इतना कम भाड़ा लेता है कि इसे सदैव हानि रहती है। इस बात को औद्योगिक कमीशन तथा स्वयं सरकार तक ने स्वीकार किया कि रेलवे के भाड़े की दर के कारण देशी उद्योग-धन्धों को लाभ के बजाय उल्टी हानि ही होती है। पाठक इतने ही से सहज ही में अनुमान लगा सकेंगे कि हमारे हित के लिए किये गये कामों ने हमारा कितना गला काटा है, काट रहे हैं। समाचार-पत्रों के पाठक अभी भूले न होंगे कि दो साल पहले करेन्सी कमीशन ने यहां के रुपये की दर बढ़ा दी थी। जन साधारण क्या समझे कि यह चाल यहां का धन इङ्गलैण्ड को ढोने तथा यहां के उद्योग-धन्धे नष्ट करने में कितनी घातक सिद्ध हुई है। पाठकों को यह भी पता होगा कि यहां के मिलों के बने माल पर ड्यूटी देनी पड़ती थी और विलायती माल उससे मुक्त था, जिसके कारण देशी माल विदेशी के मुकाबिले में कभी सस्ता बिक ही नहीं सकता था। इधर असहयोग के बाद इस विषय में आन्दोलन बहुत हुआ और सरकार की इस घातक नीति की कड़ी निन्दा होने लगी तो सरकार को लाचार होकर देशी मिलोंके बने माल पर से ड्यूटी उठा लेनी पड़ी। लेकिन एक हाथ देकर सवा हाथ खींच लेने में हमारे प्रभु बड़े दक्ष हैं। उन्होंने रुपये की दर बढ़ा दी। इसका परिणाम यह

हुआ कि विलायत से जो माल पहले अठारह सौ का चलकर यहां अठारह सौ का ही बिकता था और वापिस उन्हें उतना ही मिलता था, अब १८ सौ का भेजकर वे उसे यहां सस्ता करके १६ सौ को वेचने लगे और चूंकि यहाँ के रुपये की दर सरकार ने बढ़ा दी है इसलिए सोलह सौ रुपया यहाँ से चलकर वहाँ उन्हें १८ सौ का १८ सौ ही मिलने लगा। इस प्रकार डियूटी उठ जाने से देशी माल विलायती की अपेक्षा जो सस्ता पड़ने लगा था उस सस्ते-पन का इस प्रकार मुक़ाबिला कर दिया गया। भोले भाले भारतवासी ताकते ही रह गये, वे समझ भी न सके कि रुपये का मूल्य बढ़ जाने के क्या मानी हैं। रुपये की दर बढ़ जाने का असर अमीरों तक ही सीमित नहीं रहा। इससे ग़रीबों को तो बहुत ही अधिक हानि हुई है। एक ग़रीब किसान या मजूर आज एक रुपये का माल अपने घर से लाकर बाज़ार में बेंचता हैं तो उस रुपये का मूल्य एक रुपया नहीं है, और उसी रुपये का माल यदि वह बाज़ार से अपने घर के खर्च के लिए खरीद कर ले जाय तो रुपये की दर बढ़ जाने के कारण इस वेचने और खरीदने में उसे चार आने का घाटा रहता है। इस प्रकार यहाँ का धन इस खूबी से खींचा जा रहा है कि लोगों को पता ही नहीं चलता कि उनसे उनका धन कोई लूट रहा है। व्यापारी लोग केवल इतना कहते हुए सुने जाते हैं कि पैसा नहीं रहा, व्यापार नहीं चलता ! परन्तु पैसा क्यों नहीं रहा और कहाँ चला गया. इसे वे नहीं समझते।

कैसी कैसी कुटिल और घातक चालों से यहाँ का धन और

सम्पत्ति को ढोया गया, इसको विस्तार-पूर्वक बताना हमारे लिए इस प्राक्कथन में असम्भव है । इसलिए इसे हम यहीं छोड़ कर केवल एक बात और कह देना चाहते हैं। कहा जाता है कि हम हिन्दू और मुसलमान अंगरेजों के आगमन के पूर्व एक दूसरे की गर्दन नापने में लगे हुए थे और यदि आज अंगरेज यहाँ से चले जायँ तो फिर वही हालत हो जायगी। पाठक इस छोटी सी पुस्तिका में पढ़ेंगे कि ये दोनों जातियाँ अंगरेजों के यहाँ आने से पहले किस तरह रहती थीं। पर स्कूलों और कालेजों में हमें और ही इतिहास पढ़ाया जाता है। आज कल कालेजों में जो इतिहास हमें पढ़ाये जाते हैं वे इतनी विद्वेष भरी बातों से परिपूर्ण हैं कि यदि हमारी अपनी सरकार होती तो उन पुस्तकों को जलवा दिया गया होता और उनके लेखकों को कड़ी से कड़ी सजा दी गई होती। आजकल देश में सर्वत्र जिस पापी फूट को हम देख रहे हैं उसके लिए अगर सबसे अधिक जिम्मेदार कोई चीज़ है तो ये पुस्तकें ही हैं, जिन्हें इतिहास के रूप में हमें पढ़ाया जा रहा है। इन पुस्तकों को पढ़कर, कोई भी युवक हृदय, यदि वह हिन्दू है तो मुसलमानों के लिए, और यदि मुसलमान है तो हिन्दू के लिए, अच्छे भाव कैसे रख सकता है?

अपने कथन को सप्रमाण पाठकों के सामने रख देने के लिए हम यूनिवर्सिटीयों में पढ़ाई जाने वाली इतिहास की अनेक विषैली पुस्तकों में से केवल एक पुस्तक से कुछ बातें उद्धृत किये देते हैं। इसीसे पाठकगण सहज ही समझ सकेंगे कि हमारे दिमाग और हृदय बचपन से ही ऐसे साँचे में ढाले जा रहे हैं

जिनसे हम दूसरे से घृणा और द्वेष करें तथा अपने बुजुर्गों को अत्याचारी असभ्य और अनाचारी समझें, और अंगरेजों को अपना उद्धारक।

अपनी "दी आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया" में २५० वें पृष्ठ पर विन्सेन्ट ए० स्मिथ महाशय लिखते हैं कि "सौभाग्य से हमें फीरोजशाह के हाथ की लिखी एक पुस्तक प्राप्त हो गई है। उस पुस्तक में उसने उन कार्य्यों का उल्लेख किया है, जिन्हें वह सत्कर्म समझता था। उसने अंग-भंग करने की सजा की प्रथा को जो उठा दिया, वह तो अवश्य ही एक सराहनीय कार्य्य था" आगे चल कर लेखक फीरोजशाह की लिखी हुई पुस्तक से कुछ उद्धरण अपनी पुस्तक में देते हैं। वे इस प्रकार लिखते हैं:— फीरोजशाह में जब धर्मान्धता जागृत हो जाती थी, तब वह बड़ा ही भयंकर हो जाता था। हिन्दुओं के कुछ नये मंदिर बनने की बात सुनकर उसे घोर दुःख हुआ वह लिखता है:—

'ईश्वरीय प्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने इन इमारतों को विध्वंस करा दिया; और नास्तिकों के उन नेताओं को मरवा डाला। जो दूसरों को गलत रास्ते पर चलने के लिए बहका देते थे। इन नेताओं के अलावा साधारण आदमियों को मैंने बेंत लगवाये और उन्हें कठोर दण्ड दिये, यह मैंने तबतक किया कि यह बुराई समूल नष्ट न हो गई।'

"वह (फीरोजशाह) देहली के निकटवर्त्ती मलूह नाम के एक गाँव में गया। वहाँ पर एक धार्मिक मेला होता था। उस मेले में कुछ 'अपवित्र और अविश्वासी मुसलमान' भी सम्मिलित होते थे। आगे वह लिखता है—'मैंने हुक्म दिया कि इन लोगों के

नेता और इस कुकर्म में सहयोग देने वाले सब के सब मार डाले ! जायँ आम हिन्दू जनता को सख्त सज़ा देने की तो मैंने मुमानियत कर ही दी थी; परन्तु मैंने उनके मंदिरों को तुड़वा कर उनके स्थान पर मसजिदें बनवा दी थीं।'

"कोहात के कुछ हिन्दुओं ने महल के सामने एक नया मन्दिर बनवाया था। उन्हें उसने मरवा डाला, जिससे कि भविष्य में कोई अन्य गैर-मुसलिम एक मुसलमानी देश में फिर ऐसी शैतानी करने की हिम्मत न करे। एक ब्राह्मण जिसने खुली हुई जगह में अपना पूजा-पाठ किया था, ज़िन्दा ही जलवा दिया गया था। ये असंदिग्ध और सत्य घटनायें इस बात का प्रमाण हैं कि फीरोज़शाह प्रारंभिक मुसलमान आक्रमण कारियों की 'जंगली परम्परा' के अनुसार ही कार्य्य करता रहा। और इस बात में पूर्णतः विश्वास करता रहा कि उसकी अधिकांश प्रजा के धर्म के अनुसार खुले-आम पूजा-पाठ करने वाले को, वह मौत की सज़ा देकर ईश्वर की सेवा कर रहा है।"

इसी प्रकार स्मिथ महाशय इसी पुस्तक के २१३वें पृष्ठ पर हिन्दू सम्राटों के विषय में लिखते !—

"वास्तव में सभी या लगभग सब की सब प्राचीन हिन्दू सरकारें प्रारम्भ से ही मुसलमानों की भाँति ही अत्याचारी थीं जैसा कि अनेक प्रमाणों से स्पष्टतः प्रतीत होता है।"

उक्त उद्धरणों से विचारवान पाठक सहज ही अनुमान लगा सकेंगे कि इतिहास में इस प्रकार की बातें भर देने से कोमल और शुद्ध-हृदय युवकों पर कैसा प्रभाव पड़ता है। बेशक, इतिहास लेखक का कर्तव्य है कि वह सत्य को छिपाये न रक्खे। हम

स्मिथ महाशय के हेतु पर कभी आक्षेप नहीं करते अगर वे ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा भ्रम-पूर्ण धार्मिक विचारों से नहीं जान-बूझ कर धन के लिए किये गए। इनसे भी अधिक बर्बरता पूर्ण अत्याचारों का सच्चा-सच्चा हाल लिख देते। अंगरेज़ लेखकों ने हिन्दू या मुसलमान नरेशों के कुशासन और अत्याचारों का जहाँ खूब बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया है वहाँ ईस्टइण्डिया कम्पनी के समय में की गई लूट-खसोट, बेईमानी, धोखेबाज़ी और प्रजा के कष्टों का ज़िक्र तक नहीं किया जैसा कि इस पुस्तिका से पता चलेगा. अकाल वगैरह का इन्होंने जहाँ कहीं एक-आध जगह ज़िक्र भी किया है वहाँ उसका सारा दोष अनावृष्टि इत्यादि पर डाल दिया है। परन्तु इसके बिलकुल ही विपरीत मुसलमान बादशाहों के जमाने के अकालों का सारा दोष उस समय के बादशाह के सरे मढ़ दिया हैं। इसी पुस्तक में ३९३ पन्ने पर सन १६३०–२ के अकालों का ज़िक्र करते हुए लिखते हैं कि "शाहजहाँ के ज़माने में दरबार की शान-शौक़त, तड़क भड़क और फिज़ूल खर्ची के कारण प्रजा इतनी दरिद्र और पीड़ित थी, जैसा कि बहुत कम देखने में आया होगा। शाहजहाँ के शासन-काल के चौथे और पांचवें साल में, जब कि वह खान देश में बुरहानपुर में डेरे डाले दक्खिन के सुल्तान के विरुद्ध आक्रामक हम्ला करने के लिए पड़ा हुआ था, उसी समय एक अत्यन्त भीषण दुर्भिक्ष ने दक्खिन और गुजरात को वीरान कर दिया था। उस अकाल के बारे में, उस समय के सरकारी इतिहास लेखक अब्दुल हमीद ने इस प्रकार लिखा है:—

'दक्खिन और गुजरात के निवासी अत्यन्त तंग हो गये थे।

उन्हें एक ही मिनट के अन्दर इस बात का भी पता चल जाता है कि अमुक व्यवसाय से हमें अधिक आय की आशा है तथा अन्य कुछ व्यवसायों में हमें टोटा पड़ने का भय है।

विद्यार्थियों के कमरों में बहुधा मेजें, चारपाइयाँ अथवा कुर्सियाँ तक अनावश्यक वस्तुओं से लदी हुई पायी जाती हैं और इसका कारण अधिकतर उनके आलस्य के सिवाय और कुछ नहीं होता। वस्तु व्यवस्था के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए यदि वे थोड़ा-सा भी अंग-संचालन किया करें तो उनके कमरे सदा सजे-सजाये और साफ-सुथरे दीख पड़ें और अव्यवस्थित वस्तु को देख कर परिणाम द्वारा उत्पन्न हो जाने वाला उनका अव्यवस्थित चित्त उनके आवश्यक अध्ययन में कभी किसी प्रकार की भी बाधा न उपस्थित कर सके। मानसिक क्रिया के विकसित होते अथवा मनन द्वारा अपने विचारों को सुदृढ़ बनाते समय पास की दीख पड़ने वाली वस्तुओं का हम पर कितना प्रभाव पड़ सकता है इसका विवेचन बहुधा हम लोग पहले नहीं कर पाते और अपने प्रयत्नों में पूर्ण सफलता न पा सकने पर पीछे पछताया करते हैं। हमारे प्राचीन वनवासी ऋषि इन छोटी-सी दीख पड़ने वाली बातों का भी उचित महत्त्व जानते थे और हमें उनसे इस बात में अपने जीवन के लिए बहुत उपयोगी शिक्षा मिल सकती है।

सारे कष्ट का पूरे तौर पर अन्त हो गया था, और अगले तीन वर्षों में तो बहुत अधिक पैदावार हुई।

ईस्टइण्डिया कम्पनी के जमाने में क्यों और कैसे, कितने और कैसे भीषण अकाल पड़े, तथा प्रजा कितनी पीड़ित रही यह बात भी इस छोटी सी पुस्तिका से पाठकों को सच्चे और ईमानदार अंगरेजों की लेखनी द्वारा ही मिलेगी। इसे पढ़ कर पाठक समझ लेंगे कि अंगरेजों के आगमन से पूर्व हमारा देश कितना सम्पन्न और समृद्ध था, प्रजा कितनी सुखी और शान्त थी। तथा इनके आगमन के पश्चात् वह किस प्रकार क्रमशः दीन दुर्बल और दरिद्र होता गया।

स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ने वाले विद्यार्थी कोर्स में रक्खे गये इतिहासों के घातक परिणामों से अपने दिल को अंशतः भी बचाना चाहें तो वे उन किताबों के साथ साथ (यदि मजबूरन उन्हें वे किताबें पढ़नी ही पड़ें तो) इस छोटी सी पुस्तक को भी पढ़ लिया करें। नशा करना बुरा है, पर यदि कोई उससे अपने आप को मुक्त नहीं कर सकता, तो उसके मारक प्रभाव को रोकने के लिए मनुष्य को कुछ पौष्टिक पदार्थ खाने चाहिएँ। अन्यथा नशा उसकी जान का गाहक हुए बिना न रहेगा। यह वही पौष्टिक पदार्थ है। जो आज कल पढ़ाये जाने वाले इतिहासों के विष के प्रभाव को कुछ अंशों में मार सकता है।

आगरा
शरत्पूर्णिमा
संवत् १९८५

शिवचरन लाल शर्मा

विषय-सूची

भूमिका

देशी राजाओं के राज्यकाल में भारतीय-शासन की भलाइयां और बुराइयां चाहे जो कुछ भी क्यों न रही हों, परन्तु यह बात तो निश्चय है कि मौजूदा अंगरेजी शासन-पद्धति में जो सब से बड़ी और भयंकर बुराइयां हैं, वे तो उनके शासन-काल में हरगिज नहीं थीं। आजकल का अंगरेजी शासन तो ऐसा है जो, अंगरेजों के लिए नितान्त अशोभनीय है। इसकी बुराइयां भयंकर हैं। भारत को लूटने और उसका खून चूसने की नीति सदा बढ़ती ही जा रही है। केवल ब्रिटेन ही की भलाई के लिए जो खर्च किया जा रहा है उसका बोझ भी भारत के सर पर ही लादा जा रहा है। भारत को "लूटने और उसका खून चूसने की ये बुराइयां ऐसी हैं, जो तब तक बराबर वहां बनी रहती हैं, जब तक एक सुदूरवर्ती देश दूसरे देश पर शासन करता रहता है।"* इन बुराइयों को लार्ड सैलिसबरी के शब्दों में "राजनैतिक मक्कारी" और लार्ड लिटन की भाषा में "इरादतन की गई स्पष्ट धोखेबाजी" ने और भी बदतर बना दिया था, जिसके कारण लॉर्ड सैलिसबरी के मतानुसार भारत में "भीषण कंगाली पैदा हो गई है। इसी दुरवस्था से प्रभावित होकर लॉर्ड लारेन्स ने लिखा था कि "भारत के लोग बहुत थोड़ा खाना खा कर अपना गुजर बसर करते हैं।"

---

*ये शब्द सर जॉन शोअर के हैं जो उन्होंने सन १७८७ में कहे थे।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना खासकर भारत के धन और भारत के ही बल पर हुई है, और इन्हीं के बल पर वह टिका हुआ है। इसके अलावा ब्रिटेन भारत से लाखों करोड़ों पौंड ले चुका है, और प्रतिवर्ष लेता जा रहा है।

कोई भी निष्पक्ष और शुद्ध-हृदय अंगरेज एंग्लो-इण्डियनों की कपोल-कल्पित गाथाओं पर ध्यान न देकर यदि भारत के "गैर अंगरेजी" (UnBritish) शासन की वास्तविक खूबियों से परिचित हो जाय, तो वह अवश्य ही इस नतीजे पर पहुँचेगा कि अंगरेजों के मौजूदा शासन में हिन्दुस्तान की भौतिक और आर्थिक दशा इतनी गिर गई है, कि उस देश पर यह अंगरेजी शासन एक अभूतपूर्व अभिशाप कहा जा सकता है। यह दुःख-दायक और दयनीय स्थिति अधिक दिन तक नहीं टिक सकती। जैसा कि अनेक सुप्रसिद्ध अंगरेजों ने पहले ही से एक प्रकारकी भविष्यवाणी के रूप में कह दिया है, इसका अन्त अत्यन्त भयानक होगा। सर जान मालकम का कहना है कि "इस दुरवस्था और शासन के कुकर्मों के साथ-साथ इस बुराई के बदले की भावना भी आ रही है, जिसे हम साम्राज्य के नाश का बीज कह सकते हैं।" लॉर्ड सैलिसबरी ने कहा था "अन्याय के वह ताकत है जो सर्वशक्तिमान को भी नष्ट कर देगी।"

अंगरेजों को कोई न्यायोचित अधिकार नहीं है कि वे अशोभनीय ब्रिटिश निरंकुशता के साथ-साथ विदेशी निरंकुशता की सारी बुराइयाँ लेकर, जिनसे कि एक शासित जाति सदा कुचली जाती है, इस देश में रहें। जैसा कि लॉर्ड मेकाले ने कहा है "विदेशी शासन के जुँए का बोझ अन्य सब जुओं

से भारी होना है।" बारबार अनेक सुप्रसिद्ध अंगरेजों ने और लॉर्ड सेयों ने भी कहा है कि "हमारा सर्वप्रथम उद्देश तो हिन्दुस्तानियों कीभलाई करना है। अगर हम यहाँ पर उनकी भलाई के उद्देश्य से नहीं आये हैं, तो हमें यहाँ पर कदापि न रहना चाहिए।"

अगर भारत के पहिले शासक निरंकुश थे तो थे। अंगरेज अपनी खून-चूस नीति और निरंकुशता का समर्थन उनका उदाहरण देकर नहीं कर सकते।

वाशिंगटन हाउस,
७२, ऐनरली, पार्क
लंदन S. E

दादाभाई नौरोजी

---

* एक पौंड लगभग पन्द्रह रुपये का होता है।
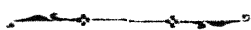
जब अंगरेज नहीं आये थे!

"मेरे ऊंचे ऊंचे कोट जो थे,
वह पड़े जमीं में हैं लोटते;
वहां उल्लू आके हैं बोलते,
जहां बाज पर न हिला सके!"

जब अंगरेज नहीं आये थे !

[यह पुस्तिका भारत-सुधार संस्था India Reform Society द्वारा ई० सन् १८५३ में प्रकाशित की गई थी, और सन् १८९९ में वह पुनः मुद्रित हुई थी]

भारत सुधार नं० ९—देशी राजाओं के अधीन

भारत का शासन और उसकी दशा
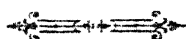
इण्डिया रिफार्म सोसायटी १८५३

शनिवार ता० १२मार्च सन १८५३ ई० को चार्ल्स स्ट्रीट के सेण्ट जेम्स स्क्वेअर में, भारत के शुभचिन्तकों की एक सभा हुई थी। इसका उद्देश्य था भारतवासियों की शिकायतों और अधिकारों के लिए लोकमत तैयार करना और उसके द्वारा पार्लियामेंट का ध्यान उस विशाल-देश की शिकायतों और दावों की ओर आकर्षित करना। उस दिन सभा ने श्रीयुत एच. डी. सिमूर, एम. पी. के सभापतित्व में निम्न लिखित प्रस्ताव पास किये :—

(१) भारत में व्यापार करने का जो अधिकार-पत्र (चार्टर) ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के पास है, उसकी अवधि ३० अप्रेल सन १८५४ को समाप्त होती है, अतः इस अवधि के बाद भारतीय शासन

के संघटन में परिवर्तन करने का प्रश्न इतना महत्त्व-पूर्ण है कि उस पर पूरी रीति से गंभीरता पूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

(२) सदा की भांति अधिकार-पत्र (चार्टर) के परिवर्तन के लिए पार्लियामेंट की दोनों सभाओं द्वारा जो कमिटियाँ नियुक्त की जाया करती थीं, उन्हें भारतीय-शासन-प्रणाली और उसके परिणाम की जांच के लिए इस बार भी नियुक्त किया गया है। पर ये कमिटियाँ इस बार पहले की अपेक्षा बहुत देर बाद नियुक्त की गई हैं, जिसके कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार-पत्र की अवधि समाप्त होने में अब इतना थोड़ा समय रह गया है, कि हमारी भारतीय सरकार के शासन-विधान में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए जो गवाहियां इकट्ठी करना जरूरी था! वह अब नहीं की जा सकतीं।

(३) चूंकि अब उक्त कमिटियों ने तहक़ीकात करना शुरू कर ही दिया है, इसलिए यह बता देना आवश्यक है कि यदि ये कमिटियाँ ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के नौकर और अफ़सरों की गवाहियों पर ही निर्भर रहीं और बुद्धिमान भारत-वासियों की दरख्वास्तों और इच्छाओं की उपेक्षा करते हुए उन्होंने अपनी जांच समाप्त कर दी, तो उस जांच का बिलकुल असन्तोष-प्रद होना निश्चित है।

(४) इसलिए भारत के शुभचिन्तकों को इस बात पर ज़ोर देना चाहिए कि एक ऐसा अस्थायी क़ानून बना दिया जाय जिसके अनुसार मौजूदा भारत सरकार तीन साल तक और इसी प्रकार अपना काम करती रहे। इससे जांच और विचार-विमर्श करने के लिए पूरा समय मिल जायगा, और पूरी जांच हो जाने पर इसी बीच में पार्लियामेंट हमारे भारतीय साम्राज्य के भावी शासन-प्रबन्ध के लिए स्थायी शासन-विधान बना सकेगी।

(५) अतः उक्त नीति के अनुसार काम करने के लिए आज यह सभा अपने को इण्डियन-रिफार्म सोसायटी (भारत-सुधार-समिति) के रूप में संगठित करती है और नीचे लिखे सज्जनों की एक कमिटी बनाती है।

श्री० टी० बारनेस, एम० पी०
,, जे० बेल, एम० पी०
,, डब्ल्यू० बिग्ज, एम० पी०
,, जे० एफ० बी० ब्लेकेट, एम० पी०
,, जी० बोयर, एम० पी०
,, जे० ब्राइट, एम० पी०
,, एफ० सी० ब्राउन
,, एच० ए० ब्रूस, एम० पी०
,, ले० क० जे० एम० कौलफील्ड, एम० पी०
श्री० जे० चीथम, एम० पी०
,, डब्ल्यू० एच० क्लार्क
,, जे० क्रूक, एम० पी०
,, जे० डिकिन्स, जन०
,, एम० जी० फील्डन, एम० पी०
,, ले० ज० सर जे० एफ० फिजेरल्ड, के० सी० बी०, एम० पी०
,, डब्ल्यू० आर० एस०

श्री० सी० हिण्डले
,, टी० हण्ट
,, ई० जे० हचिन्स, एम० पी०
,, पी० एफ० बी० जॉन्सटन
,, एम० ल्यूइन
,, एफ० ल्यूकस, एम० पी०
,, टी० मेक्कुलघ
,, ई० मिसल, एम० पी०
,, जी० एच० मूर, एम० पी०
,, बी० ओलिवीरा, एम० पी०
,, ए० जे० ओटवे, एम० पी०
,, सी० एम० डब्ल्यू० पीफॉक
,, एप्सली पेलाट, एम० पी०
,, जे० पिलकिंगटन, एम० पी०
,, जे० जी० फिलीमोर, एम० पी०
,, टी० फिन, एम० पी०
,, एच० रोव्हीं०
,, डब्ल्यू० स्कोल फील्ड,
,, डब्ल्यू ज्ही० सैमूर एम० पी०

फिज़रल्ड, एम० पी०	,, जे० बी० स्मिथ. एम०पी०
,, एम० फोर्स्टर०	,, जे० सुलीवान
,, आर० गार्डनर, एम० पी०	,, डब्ल्यू० हारकोर्ट
रा० आ० टी० एम०	एल० हीवर्थ. एम० पी०
गिल्सन, एम० पी०	,, सी० हिण्डले, एम० पी०
वाय काउण्ट गोडेरिच	,, जी० थाम्पसन, एम०पी०
एम० पी०	,, एफ० वारन
,, जी० हैड फील्ड, एम० पी०	,, जे० ए० वाइज़, एम० पी०

सोसायटी से सम्बन्ध रखनेवाला सारा पत्र व्यवहार कमिटी के अवैतनिक मंत्री से करना चाहिए और उन्हींके पास इस कार्य्य की पूर्त्ति के लिए चन्दा भेजा जाना चाहिए।

कमिटी रूम्स, क्वीन्स चैम्बर्स
१४ हे—मारकेट
१२, अप्रैल १८५२ ई०

जॉन डिकिन्सन जन
अवैतनिक मंत्री

इण्डिया रिफार्म १८५३

यहां और वहां

भारत के सब देशी राजा संधि द्वारा सुख-दुख में साथ देने वाले हमारे मित्र हैं। परन्तु हम उनके अवगुणों को बताकर और अपने गुणों की दुहाई देते हुए उनका राज्य छीनने की उन्हें धमकी देते हैं। हमारा दावा है कि देशी राज्य सभी बुरे हैं और उनके सब के सब देशी शासक अत्याचारी और विलासी। उनकी प्रजा अत्याचारों के मारे कराह रही है। अतः हमारा यह कर्तव्य है कि हम उनके दुख दूर करें। पगड़ी बांधने वाले सब निकम्मे और अयोग्य हैं। परन्तु टोपधारी सभी योग्य हैं। अंगरेजों के भारत में आने से पूर्व हिन्दुस्तान में किसी भी तरह का सुशासन नहीं था, यह अंगरेज ही हैं, जिन्होंने हिन्दुस्तानियों को सभ्यता सिखाई है, और वही यह बता रहे हैं कि शासन कैसा हो। रोम और ग्रीस के प्राचीन मन्दिर और मकबरों के खण्डहर तो सब प्रशंसा के योग्य हैं, वे अपने बनानेवालों की प्रतिभा और सुरुचि के प्रमाण हैं। परन्तु भारत के इनसे कहीं अधिक शानदार खण्डहर निरे दिखावटी और स्वार्थपरता के सूचक हैं। लार्ड एलनबरो ने इन्हें देख कर कहा था कि "हमसे पहले के शासकों का बखान करते हुए और अपनी कमजोरियों पर लज्जित होते हुए मैंने इन खण्डहरों को देखा, इन पर विचार किया।" लार्ड एबरडीन ने तत्काल

उत्तर देते हुए कहा—"हाँ, पिरामिडों को देख कर भी तुम इसी तरह लज्जा का अनुभव कर सकते हो।"

पश्चिम में जिन चीज़ों की हम दिल से प्रशंसा करते हैं, पूर्व में वही चीजें हमारी प्रशंसा के योग्य नहीं होतीं। पश्चिम में जब हम कहीं किसी बड़े उपयोगी और सजावट के काम को देखते हैं, तो हम उसे समृद्धि एवं शान्ति-पूर्ण सुशासन का एक चिन्ह मानते हैं; परन्तु पूर्व में जब हमारी नज़र ऐसी चीज़ों पर पड़ती है, तब हम कुछ और ही ख़याल करने लगते हैं। इस समय करोड़ों रुपये की जो आमदनी हो रही है वह हमारे पहले भारत का शासन करनेवालों की अद्भुत नहर-व्यवस्था का ही प्रतिफल है। देश में इन अद्भुत कार्य्यों के चिन्ह अब भी सर्वत्र पाये जाते हैं। पर हम उनकी ओर आँख उठा कर देखते भी नहीं। हाँ, अपने अपेक्षाकृत छोटे-छोटे नकली कामों पर ही हम अभिमान जरूर करते हैं।

यह कहा जाता है कि हमने हिन्दुस्तानियों को, पतित और रग-रग में झूठा पाया, हिन्दू धर्म में दुर्गुणों को पैदा करने की सहज और घातक प्रवृत्ति है, जो मुसलमानी राज्य में एक बार खूब खुली-खिली थी। हमारे अत्यधिक आलसी और स्वार्थी, गवर्नर बड़े-से-बड़े देशी राजाओं के मुक़ाबिले में, दया और भलाई की प्रतिमा समझे गये। मुग़ल बादशाहों की विलासी स्वार्थपरता ने लोगों को पतित और निर्बल बना दिया। मुग़लों से पहले के बादशाह भी या तो विवेक हीन और अत्याचारी थे, या आलसी और व्यभिचारी। न इनके पूर्वाधिकारी, ख़िलजी बादशाह ही कुछ अच्छे थे।

इस समय इस देश के सार्वजनिक समाचारपत्रों पर हमारा आधिपत्य है, जनता की सहानुभूति भी हमारी ही तरफ़ है, अतः भारत में हमसे पहले राज्य करनेवालों की बुराई करके लोगों की नज़रों में अपने को ऊँचा उठा लेना हमारे लिए बड़ा आसान काम है। हम अपनी ही प्रशंसा की बातें कहते हैं और कहते हैं कि हमारा कथन अविश्वास के पात्र नहीं हैं। लेकिन जब पहले के शासन की प्रशंसा का ज़रा भी कहीं उल्लेख पाते हैं तो झट से उसे सन्देहास्पद करार देते हैं। चौदहवीं शताब्दी में मुग़लों ने भारत पर जो विजय प्राप्त की, उसकी तुलना हम पूर्व में, उन्नीसवीं शताब्दी की विजयी, किन्तु सौम्य और दयापूर्ण अंगरेज़ी युद्धों की प्रगति से करते हैं। परन्तु यदि हमारा उद्देश पवित्र और निष्पक्ष होता तो हम मुसलमानों द्वारा हिन्दुस्तान पर किये गये इन हमलों का मुक़ाबला उसी ज़माने के नारमनों द्वारा इङ्गलैण्ड पर किये आक्रमणों से करते। मुसलमान बादशाहों के चरित्र की तुलना उन्हींके समय के पश्चिमी बादशाहों के चरित्र से करते: उनकी लड़ाइयों और युद्धों को हम अपने फ्रान्सीसी युद्धों या धर्म के नाम पर लड़ी गई लड़ाइयों के साथ एक ही तराज़ू पर तौलते। इसी प्रकार मुसलमानों की विजयों से हिन्दुओं के चरित्र पर जो प्रभाव पड़ा, उसकी तुलना हम उस प्रभाव से करते जो ऐंग्लो-सैक्सनों के चरित्र पर नारमनों की विजय से हुआ था। नारमनों की विजय के पश्चात् ऐंग्लो सैक्सन लोगों का स्वभाव ऐसा बन गया था कि यदि कोई किसी से "अंगरेज" कह कर सम्बोधन करता, तो वह उसे अपना बड़ा अपमान समझता। "उस समय

"अंग्रेज शब्द" एक गाली-सा बन गया था। उस समय जो लोग न्यायाधीश नियुक्त किये गये थे, वे ही सारे अन्यायों और विषमताओं की जड़ थे। उस समय के मजिस्ट्रेट, जिनका धर्म उचित फैसला देना था, सबसे अधिक निर्दय थे और साधारण चोर, डाकू और लुटेरों से भी अधिक लूटने-खसोटने वाले थे !" उस ज़माने के बड़े आदमी इतने अर्थ-लोलुप थे, कि वे धनोपार्जन में इस बात की वे बिलकुल परवा नहीं करते थे कि फलां उपाय उचित है या अनुचित। उस समय लोगों का चरित्र इतना भ्रष्ट था कि स्काटलैण्ड की एक राजकुमारी को अपने सतीत्व की रक्षा के लिए एक दीक्षिता ईसाइन साधुनी के वस्त्र पहन लेने पड़े।*

हमारा कहना है कि मुसलमान बादशाहों का इतिहास प्रारंभिक विजेताओं की निर्दयता और लूट-मार की घटनाओं से परिपूर्ण है। परन्तु इनका समकालीन क्रिश्चियन इतिहास भी क्या ठीक वैसा ही नहीं है ? आप ईसाई-इतिहास के पन्ने पलटिए। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में, जब जेरूसलम पर सब से प्रथम धर्म के नाम पर युद्ध करने वालों का कब्जा हुआ था, उस समय जेरूसलम की चहार दीवारी के अन्दर चालीस हज़ार आदमी थे। वे सब के सब बिना किसी भेद-भाव के उन धर्म-योद्धाओं द्वारा तलवार के घाट उतार दिये गये ! उस समय तलवार बहादुरों की रक्षा न कर सकी। उसी प्रकार कमज़ोर और डरपोकों का गिड़गिड़ाना तथा प्राणों की भीख मांगना भी उन्हें न बचा सका।

* हेनरी, आफ हंटिंगडन ऐंग्लो सेक्सन क्रोनीकल एन्ड एडमड

बूढ़े, बच्चे, स्त्री, पुरुष किसी के भी हाल पर रहम नहीं किया गया ! जिस तलवार ने माता को मौत के घाट उतारा था, उसीने उसके दुध--मुँहे बच्चे का भी खून पीया। जेरूसलम शहर की गलियां लाशों और लोथों के ढेरों से पट गई थीं ! प्रत्येक घर में निराशा और दुःख की चीत्कारों की करुणध्वनि गूंजती हुई सुनाई पड़ रही थी।

बारहवीं शताब्दी की बात है। फ्रान्स के सातवें लुई ने जब विट्री (Vitri) नामक शहर पर अपना अधिकार जमाया, तो, उसने उसमें आग लगवा दी, जिसके कारण तेरह सौ जीवित प्राणी स्वाहा हो गये। जिस समय फ्रान्स का यह अत्याचारी शासक विट्री की निरीह जनता के प्राणों के साथ यह खेल खेल रहा था, उसी समय इङ्गलैण्ड में, स्टीफन के शासनकालमें ऐसी प्रचंडता के साथ युद्ध हो रहा था कि, किसान लोग जमीन को बिना जोते-बोये ही छोड़कर अपने हल आदि को या तो नष्ट करके या वैसे ही छोड़ कर, अपने प्राणों को लेकर इधर-उधर भागे-भागे फिरते थे !

इसके बाद चौदहवीं शताब्दी की हमारी फरासीसी लड़ाइयों का ही लीजिए। उनका जितना "भयावना और नाशकारी परिणाम हुआ, उतना आज तक किसी भी देश या युग में नहीं देखा गया।" कहा जाता है कि मुसलमान विजेताओं की घोर निर्दयता के जितने उल्लेख प्रामाणिक लेखकों द्वारा पाये जाते हैं, उतने उनके द्वारा किये गये बड़े से बड़े सत्कार्यों के नहीं। परन्तु हमारे पास इन्हीं के समकालीन ईसाई-विजेताओं की घोर-तम निर्दयताओं के काफ़ी प्रमाण मौजूद हैं। लेकिन क्या हमारे पास उनकी दया और सत्कार्यों के भी प्रमाण हैं ?

चूँकि बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखकर, बड़े ढंग से लगातार इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि जन-साधारण की दृष्टि में, देशी सरकारों और देशी-राजाओं को गिरा दिया जाय, जिससे कि उनका राज्य हड़प लेने में सुविधा हो, इसलिए हम यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि हर एक हिन्दुस्तानी ऑलिवर के लिए हमारे पास एक क्रिश्चियन रोलेण्ड भी मौजूद है, जिससे लोग यह समझ लें कि अगर हिन्दुस्तान में मुसल्मान विजेता निर्दय और लुटेरे थे, तो पश्चिम में उनके समकालीन ईसाई बादशाह उनसे भी अधिक बढ़े-चढ़े लुटेरे और अत्याचारी थे। आज-कल हमारी कुछ ऐसी आदत बन गई है कि हम पंद्रहवीं और सोलहवीं सदी के हिन्दुस्तान की तुलना उन्नीसवीं सदी के इंगलैंड से करते हैं और उसी के अनुसार झट नतीजे पर पहुँच जाते हैं।

एक सावधान और गंभीर समीक्षक* का कहना है कि "जब दूसरे देशों के साथ हम इङ्गलैंड का वर्णन करते हैं, तब हम, इङ्गलैंड आजकल जैसी है उसीका जिक्र करते हैं। रिफार्मेशन† के समय के पूर्व के समय को तो शायद, हम कभी विचार ही में नहीं लाते। हमारी यह एक आदत सी बन गई है कि हम दूसरे देशों को अज्ञानी और असभ्य समझते हैं, और ऐसा विश्वास बनाये रखते हैं कि ये हमारे बराबर उन्नतिशाली नहीं हैं; फिर चाहे उनकी उन्नति कुछ ही समय पहले हमारी उन्नति से कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न रही हो।"

---

* सर थोमस मनरो।

† यूरोप का क्रान्ति-युग

अगर सोलहवीं शताब्दी के हिन्दुस्तान की तुलना उन्नीसवीं शताब्दी के इङ्गलैंड से करना उचित हो सकता है, तब तो फिर ईसवी सन की पहली सदी के समय में इन दोनों देशों की तुलना करना कहीं अच्छा होगा, क्योंकि उस समय भारत की सभ्यता अपनी उन्नति के शिखर पर थी और इङ्गलैंड की सभ्यता का कहीं नाम-निशान भी न था। भारतीय सभ्यता का अवनति-काल अलैक्जेण्डर द्वारा हिन्दुस्तान पर की गई चढ़ाई के समय से लेकर मुसलमानों की विजय तक का समय है। लेकिन हमारे पास इस बात के काफ़ी प्रमाण हैं कि उस समय में, और उससे पूर्व के समय में हिन्दुस्तान एक हरा-भरा, समृद्धिशाली और हर प्रकार से सुखी और सम्पन्न देश था; और उसकी यह उन्नति मुग़ल साम्राज्य के विध्वंस तक बनी रही। मुग़ल साम्राज्य के विध्वंस का समय, अठारहवीं शताब्दी का आरंभ-काल है।

यूनानी आक्रमण के समय

ऐल्फिन्स्टन् का कहना है कि "यूनान से आये हुए यात्रियों ने भारत के जिन-जिन भागों को देखा उनका वर्णन किया है। उस से पता चलता है कि उस समय भारतवर्ष की जन-संख्या ख़ूब बढ़ी-चढ़ी थी और यहाँ के निवासी ख़ूब सुखी और सम्पन्न थे।" सिंधु और सतलज नामक नदियों के बीच में १५०० शहर बसे हुए थे। पेलिलोथ्रा (?) नामक शहर ८ मील लम्बा और डेढ़ मील चौड़ा था; उसके चारों ओर एक गहरी खाई थी। शहर के चारों ओर चहारदीवारी थी, जिसमें ५७० बुर्ज और ६४ फाटक बने हुए थे। विदेशों में व्यापार करने के लिए

प्रत्येक शहर और उसके व्यापारिक अड्डे, हिन्दुस्तान की व्यापारिक उन्नतावस्था के सूचक हैं। ऐरियन बड़े आश्चर्य के साथ लिखता है, कि उस समय सारा हिन्दुस्तान स्वतन्त्र था। फौज को युद्ध और शान्ति, दोनों के समय में बराबर तनख्वाह मिला करती थी। सिपाहियों को घोड़े और शस्त्र राज्य की ओर से मिलते थे। वे देश में कभी लूट-खसोट नहीं करते थे। यूनान के निवासियों ने हिन्दुस्थानी लोगों की वीरता की बड़ी प्रशंसा की थी, क्योंकि उन्होंने एशिया के अन्य देशों से भी मोरचा लिया था और भारत की तलवार का मज़ा भी चक्खा था। भारत की पुलिस को वे बहुत अच्छा बताते थे। चन्द्रगुप्त की छावनी में, जिसमें चार लाख सिपाही रहते थे, चोरी किये गये माल का मीज़ान लगाने पर पता चला कि ४५) रु० रोज़ से अधिक की चोरी कभी नहीं हुई। न्याय, सम्राट् और उसके पञ्च करते थे। ज़मीन से लगान वसूल किया जाता था। ज़मीन बादशाह की बताई जाती थी। लगान, पैदावार का एक चौथाई हिस्सा होता था। खेत सब पैमाइश किये हुए होते थे और सिंचाई के लिए पानी का अच्छा प्रबन्ध था। व्यापार पर कर देना पड़ता था और सौदागर तथा व्यापारियों को आय-कर (इनकम् टैक्स) भी देना पड़ता था। सरकार की ओर से सड़कें थीं और सड़कों पर दूरी के सूचक पत्थर थे। युद्ध के समय में घोड़े लड़ाई की गाड़ियाँ खींचते थे पर फौज के प्रस्थान के समय यही काम बैल करते। दस्तकारी सादी किन्तु सुन्दर होती थी। सोना, जवाहरात, रेशम और गहने घर-घर में थे। जितनी बातें ऊपर बताई गई हैं उनमें वे सब चीज़ें हैं जिनकी कि आवश्यकता

सभ्य-जीवन में होती है। अनाज तथा अन्य पैदावार की क़िस्में और परिमाण से पता चलता है कि देश में उस समय पैदावार अच्छी होती थी। "उनकी संस्थायें अच्छी थीं, शत्रुओं के प्रति उनका आचरण मनुष्योचित था। उनका साधारण ज्ञान बहुत ज्यादा था। पुरुष और प्रकृति का ज्ञान सर्व साधारण को वहाँ इतना अधिक था कि एथेन्स के उन्नति-युग में वहां के बड़े से बड़े दिमागों में उसकी कहीं अस्पष्ट सी झलक-मात्र दिखाई दी।"❀

ईसा के समय के कुछ शताब्दी पूर्व भारतवर्ष में अशोक नाम का एक हिन्दू राजा राज करता था। उसके आज्ञा-पत्र, उसके विशाल साम्राज्य की सीमा के द्योतक हैं, और उनसे उसकी सरकार की उन्नतावस्था तथा सभ्यता का पूरा पता चलता है। उन आज्ञा-पत्रों में, साम्राज्य भर में अस्पताल या दवाखाने स्थापित करने, सड़कों के इधर-उधर पेड़ लगाने और कुँए बनाने का आदेश है। ईसा से ५६ वर्ष पूर्व, विक्रमादित्य नाम के एक हिन्दू राजा का, वर्णन करते हुए लिखा है कि विक्रमादित्य एक बड़ा शक्तिशाली राजा था। वह एक सभ्य और आबाद देश में राज्य करता था।

मुसलिम-आक्रमण-काल

हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के लेखक इस बात में पूर्णतः सहमत हैं कि मुसलमानों की विजय के समय भारतवर्ष खूब सम्पन्न था। वे कन्नौज के राज्य की विशालता और भव्यता तथा सोमनाथ के मंदिर की अतुल सम्पत्ति का वर्णन बड़े प्रशंसा-युक्त आश्चर्य से करते हैं।

❀ ऐलफिन्स्टन कृत भारतीय इतिहास

प्रत्येक मुसलमान शाही घराने में अनेक बादशाह असाधारण चरित्रवान हुए हैं। मुहम्मद ग़ज़नी की बुद्धिमत्ता, शील और साहस के साथ-साथ उसका कला और साहित्य के लिए उत्साह वर्णन प्रसिद्ध है। सुप्रसिद्ध कला और साहित्य सेवियों के प्रति अत्य-धिक उदारता के कारण उसकी राजधानी में प्रतिभाशाली साहि-त्यज्ञों का इतना बड़ा जमाव रहने लगा था कि एशिया में वैसा कभी देखा तक न गया था। अगर सम्पत्ति इकट्ठा करने में वह लुटेरा था, तो सम्पति का अच्छे से अच्छा और शान के साथ उपयोग करने में उसका कोई बराबरी नहीं कर सकता था उसके चार उत्तराधिकारी कला और साहित्य के बड़े पुरस्कर्त्ता थे और उनकी प्रजा उन्हें अच्छा शासक मानती थी। क्या इनके समकालीन पश्चिमी बादशाह विलियम दी नोरमन तथा उसके उत्तराधिकारियों के विषय में भी हम यही कह सकते हैं। जो बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में हुए थे। आम तौर पर सब लोग यही समझते हैं कि मुसलमानों के लिए हिन्दुस्तान की विजय बड़ी आसान बात थी; परन्तु इतिहास हमें बतलाता है कि कोई भी हिन्दू राज्य बिना करारे संघर्ष के नहीं जीता जा सका। उनमें से अनेक तो कभी जीते ही न जा सके, जो कि आज तक प्रभावशाली राज्य बने हुए हैं। हिन्दुस्थान में मुसलमानी राज्य का संस्थापक शाहबुद्दीन, बारहवीं सदी के अन्तिम काल में देहली में राजपूत सम्राट द्वारा बिलकुल परास्त कर दिया गया था।

अफ़गान बादशाह

शाहबुद्दीन के उत्तराधकारियों में से कुतुबुद्दीन भी एक था।

एल्फिन्स्टन; "हिस्ट्री आफ इन्डिया" (पहला हिस्सा।)

इसने कुतुब मीनार बनवाई थी। जिसके समान ऊँची मीनार संसार भर में नहीं है। इसने मीनार के निकट ही मसजिद भी बनवाई थी जिसकी विशालता और कारीगरी की सुन्दरता हिन्दुस्तान को अन्य किसी मसजिद में नहीं पाई जाती।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक फरिश्ता लिखता है कि "सुल्ताना रज़िया में वे सब गुण थे, जो एक रानी में होने चाहिए उसके कार्य्यों को अधिक तीव्र दृष्टि से देखने वाले भी उसमें कोई ऐब नहीं पा सकते। परन्तु वह स्त्री थी।" एक योग्य और न्याय-प्रिय शासक के सब गुणों से वह सम्पन्न थी। परन्तु इतिहास सुल्ताना रज़िया के समकालीन, इंग्लैंड के राजा जौन या फ्रान्स के राजा फिलिप के सम्बन्ध में हमें ऐसी अच्छी बातें नहीं बताता। इसी घराने का बादशाह जलालुद्दीन भी अपने साहित्य-प्रेम, हृदय की विशालता तथा दया के लिए अपनी प्रजा के आदर का पात्र था।

दक्षिण के मध्य युगीन हिन्दू-राज्य

चौदहवीं सदी के मध्य-काल में करनाटक और तैलिंगण के हिन्दू राज्य फिर से स्थापित हुए थे। करनाटक की राजधानी विजयनगर तो इस बीच में उन्नति के शिखर पर पहुँच गई थी। वह इतना शक्तिशाली बन गया था कि इससे पूर्व के किसी राजघराने के शासन-काल में उसकी इतनी उन्नति हुई ही नहीं थी। उस समय दक्खिन के हिन्दू-मुसलमान राजाओं में इतना सद्भाव था कि उनके आपस में विवाह-शादी भी होने लगे थे। मुसलमान बादशाहों के यहां सब से बड़े फौजी अफसर हिन्दू होते

एल-फिन्स्टन की "हिस्ट्री आफ इन्डिया" (I: ६०१)

थे। और हिन्दू राजाओं के यहां मुसलमान। विजयनगर के एक हिन्दू राजा ने तो अपनी मुसलमान प्रजा के लिए एक मसजिद भी बनावा दी थी।

तुग़लक बादशाह

सन १३५१ ई० में मुहम्मद तुग़लक़ के शासन काल में राजधानी से लेकर सीमा-प्रान्त तक सुसंगठित पैदल और घुड़ सवारों की चौकियां थीं, जिनका काम सड़क पर चौकी-पहरा देना था। हिन्दुस्तान की राजधानी देहली शहर को भव्य शहर कहा गया है और उसकी मसजिदें तथा चहार दीवारी लासान। इसके उत्तराधिकारी फीरोज़शाह ने कृषि की उन्नति के लिए दरियाओं के किनारे पचास बांध बँधवाये थे और चालीस मसजिदें, तीस कालेज, सौ सरायें, तीस तालाब, एक सौ अस्पताल एक सौ नहाने के घाट और एक सौ पचास पुल इसके अतिरिक्त आश्चर्य जनक कारीगरी की अनेक इमारतें तथा सब के मनो-विनोद के लिए अनेक स्थानों का निर्माण भी कराया था। इसके अलावा यमुना से एक नहर भी निकाली थी, जिसे पीछे से अंग्रेज़ सरकार ने मरम्मत कराके पूरा किया। यह नहर उस स्थान से निकाली है, जहां से यमुना करनाल के पहाड़ों से पृथक होकर हांसी और हिसार की ओर जाती है।

इस बादशाह के बारे में इतिहास लेखक, आगे चलकर यह लिखता है कि फीरोज़शाह के शासन-काल में प्रजा बड़ी सुखी थी, लोगों के घर अच्छे और सुसज्जित थे, और प्रत्येक घर में स्त्रियों के पास सोने-चांदी के क़ाफी ज़ेवर थे। प्रजा में प्रत्येक

व्यक्ति के पास एक अच्छा तख़्त और एक सुन्दर बाग़ अवश्य था। यह इतिहास लेखक चाहे विश्वसनीय भले ही न हो परन्तु यह बात तो निश्चय ही है कि भारतवर्ष उस समय एक हरा-भरा और शांतिः सम्पन्न देश था। इस कथन की पुष्टी इटली से आये हुए एक यात्री के बयान में भी होती है। यह यात्री सन १४२० ई० में भारत में आया था। गुजरात की सम्पन्नावस्था देखकर तो यह चकित रह गया था। उसने गंगा के किनारे, सुन्दर-सुन्दर बाग़ बग़ीचों से घिरे हुए, अच्छे-अच्छे शहर देखे। मराज़िया नगर को जाते समय उसे चार सुप्रसिद्ध शहरों में हो कर जाना पड़ा था। मराज़िया नगर को उसने सोना, चांदी और जवाहरातों से भरा हुआ पाया. एक शक्तिशाली नगर पाया इस कथन का समर्थन बारबोरा और वार टेमा के कथन द्वारा भी होता है, जिन्होंने सोलहवीं सदी के प्रारंभ में हिन्दुस्थान में भ्रमण किया था। पहले व्यक्ति ने खम्भात को एक सुदृढ़ नगर बताया है जो कि एक सुन्दर तथा उपजाऊ भूमि में बसा हुआ था, और जिसमें फ्लैण्डरस (हालैण्ड) की भांति सब देशों के व्यापारी तथा कारीगर रहते थे। सीज़र फ्रेडरिक ने गुजरात के ऐश्वर्य्य का वर्णन भी ठीक ऐसा ही किया है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य-काल की बात है. मुहम्मद तुग़लक़ के अत्याचारों और अराजकता के राज्य में, जब कि देश के अधिकांश भागों में इधर-उधर आक्रमण और लड़ाइयां हो रही थी, इब्नबतूता नाम के एक यात्री ने इस देश का पर्यटन किया था। वह अपनी यात्रा के वर्णन में अनेक बड़े-बड़े तथा आबाद शहरों का जिक्र करता हुआ कहता

कि जब अराजकता और अशान्ति के युग में भी इस देश की इतनी अच्छी अवस्था है तो शान्ति और सुशासन के समय में तो न मालूम यह कितनी उन्नतावस्था में रहा होगा।

सन १४४२ ई० में, तैमूरलंग के राजदूत अब्दूरीजेन ने दक्षिण भारत का निरीक्षण किया था। यह भी अन्य समीक्षकों और दर्शकों के दिये गये इस देश की समृद्धि के वर्णनों से पूरी तरह महमत है। खानदेश का राज्य तो इस समय में बड़ा ही समृद्धि-शाली राज्य था। दरियाओं के किनारे जगह-जगह पर पत्थर के अनेक सुन्दर घाट बने थे, जिनके कारण खेतों की सिंचाई बड़ी सुगमता से हो सकती थी। घाटों की बनावट इस देश की कारीगरी और इस देश के निवासियों की योग्यता का ज्वलंत प्रमाण हैं।

वह शाही जमाना

मुग़ल घराने का पहला बादशाह बाबर भी हिन्दुस्तान को उतनी ही घृणा की दृष्टि से देखता था जितनी घृणा की दृष्टि से यूरोपियन उसे अब भी देखते हैं। परन्तु वह कहता है कि यह देश अत्यन्त सभ्य और धनवान है। उसने यहां की इतनी बड़ी आबादी तथा हर पेशे के अनेक हुनरमन्द आदमियों को देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया है। अपने शासन के आवश्यकीय कामों के अतिरिक्त वह सदा तालाबों और छोटी नहरों के बनवाने और अन्य देशों के फल वगैरा अनेक जरूरत की चीजों को यहां पर पैदा कराने के उद्योग में लगा रहता था।

बाबर का बेटा हुमायूं बड़ा चरित्रवान और सदाचारी था। इसे शेरशाह ने हराकर हिन्दुस्तान से मार भगाया था। शेरशाह बड़ा योग्य और अत्यन्त बुद्धिमान था। उसके कार्य्य बुद्धि और प्रजा की भलाई से परिपूर्ण होते थे। यद्यपि उसे अपने अल्प शासन-काल में सदा लड़ाई के मैदान में ही रहना पड़ा, परन्तु उसने अपने राज्य में प्रशंसनीय शांति स्थापित कर दी थी और शासन-विभाग को बहुत कुछ उन्नत बना दिया था उसने बंगाल से लेकर पश्चिम रोहतास तक जो सिंधु नदी के निकट है, एक पुख्ता सड़क बना दी थी। इस सड़क पर जगह-जगह सरायें और हर डेढ़ मील पर एक-एक कुआ भी बनवा दिया था। हर मसजिद में एक-एक इमाम और एक-एक मुअ़ज्जिम रहता था और हर सराय में ग़रीबों और कगालों के लिए सदावर्त्त का प्रबन्ध था। हिन्दुओं और मुसलमानों की जांत-पांत के अनुसार ही सेवा सुश्रूषा के लिए इन सरायों में नौकर चाकर भी मिलते थे। सड़कों पर छाया के लिए पेड़ों की कतारें लगवा दी थीं। और इस इतिहास लेखक के अनुसार कहीं-कहीं अस्सी वर्ष तक पुराने दरख्त पाये जाते थे।

अकबर

सुप्रसिद्ध अकबर के चरित्र के सम्बन्ध में तो विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है। वह शासन-सभा में जितना चतुर था। लड़ाई के मैदान में उतना ही वीर था। अपने ज्ञान, सहिष्णुता, उदारता, दया, साहस, संयम, उद्योग-शीलता तथा हृदय की विशालता के लिए तो वह बहुत प्रसिद्ध था। पर अपने शासन की आन्तरिक नीति के कारण अकबर की गणना उन अच्छे से

अच्छे सम्राटों में है, जिनका राज्य मानव-जाति के लिए एक ईश्वरीय आशीर्वाद और नियामत सिद्ध हुआ है। (१) उसने अपने शासन काल में अपराधियों की "अग्नि परीक्षा बन्द कर दी थी। लड़कों की चौदह वर्ष और लड़कियों की बारह वर्ष की अवस्था से पूर्व विवाह करने की सख्त मनाई करदी थी। कुर्बानी में जानवरों का मारा जाना रोक दिया था। हिन्दू धर्म के विरुद्ध, उसने वेवाओं को अपना दूसरा विवाह करने की आज्ञा दे दी थी। उसने उन वेवाओं का सती होना रोक दिया था जो स्वेच्छा से अपने पति के साथ जलने के लिए तैयार न थीं। उसके यहां हिन्दुओं को मुसलमानों के समान ही नौकरी मिलती थीं। उसने काफ़िरों पर लगने वाला कर (जज़िया) उठा दिया था। यात्रियों को जो टॅक्स देना पड़ता था,वह भी माफ़ कर दिया था। लड़ाई में कैद कर दिये गये लोगों को, गुलाम बनाने की प्रथा को कड़ाई के साथ रोक दिया था। लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए शेरशाह ने जो काम शुरू किया था, उसे अकबर ने पूरा किया था। अपने साम्राज्य के अन्तर्गत खेती करने योग्य सारी ज़मीन की उसने दुबारा पैमाइश कराई। हर बीघे की पैदावार का ठीक ठीक पता लगाया। उसमें से जनता को कितना भाग दिया जाय उसका निश्चय किया और उसीके अनुसार उस पर एक निश्चित कर रुपये के रूप में मुकर्रर कर दिया। परन्तु किसानों को इस बात की स्वतंत्रता दे दी थी कि उन्हें रुपये के रूप में कर प्रतीत होतो वे पैदावार के उस निश्चित हिस्से को ही दे दें। इसके

---

१ एल्फिन्स्टन का इतिहास खंड २ पृ० २८०

साथ साथ उसने अन्य अनेक दुःखदायी करों को बन्द कर दिया था. अफ़सरों को प्रजा से नज़राना लेने की भी मनाई कर दी थी। इन बुद्धि पूर्ण कार्य्यों और उपायों द्वारा जनता के सर से बहुत से कर उठ गये। उसने अपने मुल्की अधिकारियों (Revenue officers) को जो हिदायतें दी थीं, और जो हमें भी प्राप्त हो गई हैं, उनसे उदार शासन-प्रबन्ध तथा प्रजा के सुख और आराम के लिए उसकी उत्कट इच्छा का पता चलता है। न्याय-विभाग के अधिकारियों को उसने जो हिदायतें दी थीं, उनसे उसके प्रजा के प्रति न्याय और भलाई करने के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। उसने उन्हें आज्ञा दे रक्खी थी कि जहां तक हो सके वे अपराधियों को फांसी की सज़ा न दें और भयंकर राज-विद्रोह के अपराधों के अलावा वे उसकी स्वीकृति लिये बिना किसी को भी फांसी न दें। फांसी की सज़ा के साथ-साथ अपराधियों के अंग-भंग की सजा को भी उसने रोक दिया था। उसने अपनी फौजों में सुधारकर उनका पुनर्संगठन किया था। पहले ऐसा नियम था कि सरकार को करों से जो आय होती थी, उसीमें से एक ख़ास हिस्सा सिपाहियों के लिए निश्चित कर दिया जाता। परन्तु अकबर के नये सुधारों के अनुसार उन्हें सरकारी खज़ाने से प्रति मास पृथक वेतन मिलने लगा था। प्रजा की रक्षा के प्रबन्ध तथा अन्य सार्वजनिक हित के कामों के अलावा उसने अनेक भव्य भवनों का निर्माण भी कराया था, जिनकी प्रशंसा विशप हेबर ने हृदय से की है। उसने शासन के प्रत्येक विभाग में काम करने की पद्धति और नियम निश्चित किये और उनके अनुसार काम करना शुरू कराया। उसकी प्रस्थापित संस्था में "सुशासन

और सुन्दर व्यवस्था की आश्चर्य-जनक प्रतिमूर्ति थी, जहां असंख्य लोग बिना किसी गुल-गपाड़े के शान्ति पूर्वक काम करते रहते थे। और राज्य में अत्यधिक आमदनी के होते हुए भी पूरी क़िफायत शारी से काम लिया जाता था।"

अकबर जितना शानदार था उतना ही सरल भी था। जिन यूरोपियनों ने उसे देखा था उन्होंने उसे स्वभाव का मिलनसार, उदात्त, दयावान और सख्त, खान-पान में संयमी, कम सोने वाला, तोपें और बन्दूक बनाने में चतुर, तोप चलाने में दक्ष, तथा यंत्र-कला में निपुण, अद्भुत उद्योगशील, गंवारों तक के प्रति मिलनसार अपनों के लिए प्यारा और रौबीला तथा दुश्मनों के लिए खौफ़नाक था। क्या अकबर के समकालीन फ्रान्स के राजा चौथे हैनरी या इंग्लैण्ड की रानी एलीज़ाबैथ के विषय में भी हम यही कह सकते हैं।

राजा नहीं, पिता

ई० सन १६२३ में इटली के पीट्रो डील वैले नामक यात्री ने, जहांगीर के शासन-काल के अन्तिम वर्ष में जहांगीर के चरित्र और भारतवर्ष की दशा के सम्बन्ध में लिखा था कि "आम तौर पर सब लोग ऊँचे दरजे के लोगों की तरह शान के साथ रहते हैं, हिन्दुस्तानियों में ठाट-बाट के साथ रहने की आदत सी है। जहांगीर के शासन-काल में वे इस शान-बान के साथ बड़ी आसानी से इसलिए रह लेते हैं कि बादशाह उन्हें शान-शौक़त से रहता देखकर उनका धन-धान्य छीनने की नियत से उनपर किसी प्रकार के झूठे दोषारोपण नहीं करता, जैसा कि उस समय दूसरे मुसलमान देशों में होता था।"

लेकिन अकबर के नाती शाहजहां के राज्य-काल में भारतवर्ष अत्यधिक समृद्धिशाली हो गया था। उसकी प्रजा ने निर्विघ्न शांति और सुशासन का पूरा आनन्द और लाभ उठाया था। यद्यपि सर थोमस रो ने, सन १६१५ ई० में शाहंशाह की छावनी में उससे भेंट की थी तथापि उस समय उसने वहां विपुल सम्पत्ति देखी और उसे देखकर वह आश्चर्य चकित हो गया था। उसने देखा था कि कम से कम दो एकड़ जमीन सोने और चांदी के काम से सुसज्जित दरी और क़ालीनों तथा परदों से बिछी पड़ी थी, जिनका मूल्य सोने और जवाहरात से जड़ी हुई मखमल के बराबर होता है। परन्तु थोमस रो के अलावा हमारे पास टेवर-नियरके कथन का प्रमाण भी मौजूद है। उसका कहना है कि तख्त ताऊस के बनवाने वाले ने, जब वह सिंहासनारूढ़ हुआ तब सोना और कीमती जवाहरात का तुलादान कर लोगों में लुटवा दिया था। फिर भी उसका अपनी प्रजा पर शासन एक राजा की भांति नहीं, बल्कि एक बड़े परिवार पर एक उदार हृदय पिता के समान था।" अपने शासन के आन्तरिक प्रबन्ध पर वह सदा कड़ी नजर रखता था। अपने राज्य में शान्ति और सुप्रबन्ध तथा शासन के प्रत्येक विभाग में सुव्यवस्था की दृष्टि से शाहजहां का शासन भारत में अद्वितीय रहा है। अपने प्रत्येक काम में वह इतना मितव्ययी था कि अपनी कन्धार की चढ़ाई और बाल्ख प्रदेश की लड़ाई आदि के भारी खर्चे के अलावा दो लाख घुड़ सवारों की स्थायी सेना के व्यय के लिए नियमित रूप से व्यय करते हुए भी, सोना, चांदी और जवाहरात के ढेरों के अतिरिक्त, लगभग, चौबीस करोड़ नक़द मुद्रा उसने खजाने में

छोड़े थे। उसका व्यवहार अपनी प्रजा के प्रति दया-पूर्ण और पितृवत् था। अपने आस-पास के लोगों के प्रति उसके भाव कितने उदार थे, इसका पता अपने बेटों में उसके विश्वास से चलता है (१)

देश की इस समृद्धि की नींव इतनी दृढ़ हो गई थी कि औरंगजेब के दीर्घ. असहिष्णु और अत्याचारी राज्य में भी वह एक मुद्दत तक हरा-भरा बना रहा। औरंगजेब के बाद उसके उत्तराधिकारी बादशाह कमजोर और दुष्ट निकले। इसी कारण तीस वर्ष के अन्दर ही कुशासन के कारण मुग़ल साम्राज्य का विध्वंस हो गया। फिर सन १७३९ में नादिरशाह जो विपुल धन यहां से ढोकर ले गया उससे इस बात का पता चलता है कि उस समय भी तुलनात्मक दृष्टि से भारतवर्ष कितनी सम्पन्नावस्था में था।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के दक्खिन के अनेक विख्यात राजाओं में बीजापुर का दीवान मलिकअम्बर एक वीर योद्धा और प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ के नाम से विख्यात था। उसके अन्दर एक असाधारण प्रतिभा थी। उसने अपनी शासन निपुणता का भीतर और बाहर दोनों जगह खूब ही मान बढ़ाया था, उसने इजारे की प्रथा तोड़ दी। पहले पैदावार का एक हिस्सा लगान के रूप में दिया जाता था, उसके बजाय भी उसने लगान रुपये के रूप में निश्चित कर दिया। जिन गांवों की दशा

---

१ ऐलफिंस्टोन खंड २ पृष्ठ ३९९

* ग्रैण्ट डफ खंड १ पृष्ठ ९४—९६

बिगड़ गई थी, उनको फिर से सुधारा। इन उपायों तथा सुधारों से देश कुछ ही दिनों में हरा-भरा और समृद्धिशाली बन गया। यद्यपि उसके शासन-प्रबन्ध में व्यय बड़ी उदारता से किया जाता था तथापि उसके राज्य की आय भी विपुल थी। बीस वर्ष से भी अधिक समय तक वह विदेशी विजेताओं के लिए एक अभेद्य दुर्ग के समान दृढ़ बना रहा। यद्यपि मलिकअम्बर को लगातार लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं, तथापि इस अद्भुत व्यक्ति को अपने राज्य में शान्ति कालीन कलाओं की वृद्धि के लिए पर्याप्त समय मिल जाता था। उसने किरकी नामक शहर बसाया था, और अनेक भव्य महल बनवाये थे। अपने राज्य-काल में मलिक ने आन्तरिक शासन-विभाग में ऐसी प्रबन्ध-पद्धति को शुरु किया, जिसके कारण राज्य के प्रत्येक गांव में सेनापति की अपेक्षा उसका नाम अब भी शासक के रूप में आदर से लिया जाता है।

चौदहवीं और पन्द्रहवी शताब्दी में मुसलमान बादशाहों के समकालीन हिन्दू राजाओं के चरित्र के बारे में तो हमें कुछ नहीं मालूम; परन्तु हमें इतना पता तो जरूर है कि इस जमाने में इनके राज्य अपने पूर्वजों के समान ही काफी शान और शक्ति से परिपूर्ण थे। हमें यह भी पता है कि एकाध को छोड़कर सभी ख़ास-ख़ास मुसलमान बादशाहों के प्रधान हिन्दू ही थे। अर्थ-सचिव और प्रधान सेनापति का काम उन्हीं के हाथों मे थे।

सदाचार का आदर्श

सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में और, औरंगज़ेब के

शासन-काल में मुग़ल साम्राज्य को जड़ से हिला देने वाला "लुटेरा" शिवाजी एक बहुत ही योग्य और अत्यन्त व्यवहार-चतुर सेनापति था। उसकी मुल्की शासन-व्यवस्था बड़ी सुव्यवस्थित और नियमित थी। प्रान्तीय तथा ग्रामीण अफसरों से, अपनी प्रजा की रक्षा के लिए बनाये गये नियमों के पालन कराने की कार्यकुशलता उनमें थी। शिवाजी के दुश्मन भी इस बात के साक्षी हैं कि वे न्यायपूर्ण नियमों द्वारा लड़ाई की उन बुराइयों को कम कर देने के प्रबल इच्छुक थे। और इनका पालन वे बड़ी सख्ती से कराते थे, सब बातों का विचार करने पर कहना पड़ता है कि यह वीर पुरुष अपने सदाचार का वह आदर्श उपस्थित कर गया है जिसकी समता करना तो दूर की बात है पर उसका कोई देशवासी उसको पहुँच तक नहीं पाया है। पर शिवाजी की आन्तरिक शासन-प्रबन्ध की शक्ति उनकी युद्ध-चातुरी से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी थी। (२) उनकी इस आन्तरिक शासन-कुशलता का प्रभाव अस्सी वर्ष बाद सन् १७५८ ई० में भी दिखाई पड़ता है। मराठा साम्राज्य के बारे में ऐनक्वोटिलडू पेरन ने सन १७५८ में जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है:—

"चौदह फरवरी सन १७५८ ई० को मैं सूरत जाने के उद्देश से, माही से गोआ के लिए रवाना हुआ। अपनी सारी यात्रा में, प्रत्येक राज्य के सिक्कों के नमूने मैं लेता गया, फलतः कन्याकुमारी से देहली तक इस समय जितने सिक्के प्रचलित हैं, उन सब के नमूने मेरे पास मौजूद हैं।"

---

(२) ग्रैण्ट डफ लिखित मराठों का इतिहास खण्ड २.

उसी वर्ष २७ मार्च को दिन के दस बजे मैं पश्चिमी घाट की पर्वतमाला से गुजरता हुआ जब मराठों के प्रदेश में में पहुँचा, तो मुझे प्रतीत होने लगा कि, मैं सत्य-युग की उस सादगी और सुख के बीच में हूँ, जहां प्रकृति अभी तक अपनी पूर्वावस्था में ही है, जहां पर लड़ाई और कष्टों का लोगों ने नाम तक नहीं सुना। लोग प्रसन्न, उत्साही और पूर्णतया स्वस्थ थे। असीम आतिथ्य सत्कार वहां का सार्वभौम गुण था। प्रत्येक दरवाजा सदा खुला था और पड़ौसी, मित्र, एवं विदेशियों का भी एक सा स्वागत होता। घर में जो कुछ भी होता उनके सामने खुले हृदय से रख दिया जाता। चलते चलते मैं औरंगाबाद के नजदीक जा पहुँचा। शहर कोई सात मील रहा होगा। यहां से मैं एलोरा की प्रसिद्ध गुफाओं को देखने गया था।*

पेशवाओं का शासनकाल

शिवाजी के कई उत्तराधिकारी बड़े योग्य थे। उनमें से पेशवा बालाजी विश्वनाथ और उनके सुपुत्र बाजीराव बल्लाल के नाम उल्लेखनीय हैं। बाजीराव में एक महाराष्ट्रीय राजा के सब गुण विद्यमान थे! वह साहसी, उत्साही और कष्टों को धैर्य्य पूर्वक सहनेवाले थे। व्यवहार कुशलता बुद्धिमत्ता और तत्परता आदि कोंकन के ब्राह्मणों के प्रसिद्ध सद्गुण तो उनमें विद्यमान थे ही। पर उनका मस्तिष्क उर्वर था और भुजाओं में अपनी सोची

---

* एम एन्कटिक डु पेरन के भारतीय प्रवास का संक्षिप्त विवरण नामक एक लेख से, जो १७६२ में जन्टलमन्स मेगाजिन नामक एक पत्र में छपा था। पृ० २७६।

योजनाओं को कार्य में परिणत करने का बल था। उनकी अथक उद्योगशीलता और सूक्ष्म दृष्टि ने उनके अन्दर एक शक्ति पैदा कर दी थी, जिससे कि गंभीर और राजनैतिक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर भी भलीभांति विचार कर वे बहुत जल्दी अपना मत स्थिर कर सकते थे। वह एक असाधारण वक्ता थे; उनकी बुद्धि तलस्पर्शी थी और वह स्वभाव के सीधे सादे थे। लेकिन वे बड़े चतुर और साहसी सेना-नायक थे; अपने अदने से अदने सिपाही के सुख-दुःख में सदा सम्मिलित होने के लिए उनके पास हृदय था।

इनके उत्तराधिकारी बालाजी राव में पर्याप्त राजनैतिक बुद्धिमत्ता, व्यवहार कुशलता और महान विनम्रता थी। स्वभाव से कुछ आलसी और विलासी होते हुए भी वह उदार और दानी थे। वह अपने सम्बन्धियों और आश्रितों के प्रति दयावान, किन्तु अपनी प्रजा पर आक्रमण करनेवालों के घोर शत्रु थे। लगातार-युद्ध की चिन्ता में लगे रहने पर भी वे अपना अधिकांश समय, राज्य की आन्तरिक शासन-व्यवस्था में ही लगाते थे। उनके शासन-काल में सारे महाराष्ट्र की दशा बहुत कुछ सुधर गई थी। बालाजी रावने इजारे की पद्धति को उठा दिया और न्याय विभाग की साधारण दीवानी अदालतों में पर्याप्त सुधार किया था। नाना लैश (?) पेशवा के ज़माने को तो सारे महाराष्ट्र के किसान "अब तक दुआयें देते हैं।"* यद्यपि बालाजी राव के उत्तराधिकारी श्री माधवराव

---

* Grant Duff's History of the Marathas Vol. II .P 160.

बड़े युद्ध-प्रवीण थे तथापि एक शासक की हैसियत से बालाजी-राव के चरित्र का महत्त्व अधिक है।

"गरीबों की धनिकों और निर्बलों की अत्याचारियों से रक्षा करने तथा उस समय की समाज-रचना जहां तक आज्ञा देती थी, उसके अनुसार सबके साथ समानता का व्यवहार करने के लिए वह सुप्रसिद्ध थे।" बालाजीराव ने अपने सुप्रबन्ध में किसानों की शिकायतों पर ध्यान दे कर राज्य के मुल्की अधिकारियों को अपने पद और अधिकारों का दुरुपयोग करने से रोक दिया था। उस ज़माने में खेतों की पैदावार की दृष्टि से महाराष्ट्र प्रान्त भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक उन्नतावस्था में था। परम्परागत हकों का दावा रखने वाले लोगों को ऊँचे अधिकार देने और उदारता पूर्वक उनकी तरक्की करने की नीति, उनके अन्दर देश-भक्ति बढ़ाने और सुशासन की दृष्टि से उनमें राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजित करने का बढ़िया काम करती थी। पेशवा माधवराव को राज-काज में, अपने मंत्री सुप्रसिद्ध रामशास्त्री से, बड़ी सहायता मिलती थी। रामशास्त्री इतने पवित्र और धर्म्मात्मा न्यायाधीश थे, कि किसी भी परिस्थिति में उनका चरित्र सदा आदरणीय समझा जाता था। खासकर अपने चरित्र के प्रत्यक्ष उदाहरण से उन्होंने अपने देशवासियों का बड़ा उपकार किया। उनके जीवन-काल में ही उनकी राय का सब बड़ा आदर करते और वह पुख्ता समझी जाती थी। उनके समय की पंचायतों के फैसले जिनमें लोगों पर डिक्रियां भी दी जाती थीं, आज भी प्रमाण माने जाते हैं। लोक-सेवा के लिए उनके उज्ज्वल चरित्र और अथक परिश्रम के पुनीत प्रभाव ने सब श्रेणी के लोगों की दशा सुधारने में

जादूसा काम किया था। बड़े से बड़े आदमियों के लिए उनका जीवन एक नमूना था। अपराध या भूल करने वाले बड़े से बड़े आदमी भी रामशास्त्री के नाम से भयभीत हो जाते थे। यद्यपि बड़े-बड़े पदाधिकारी तथा धनवानों ने उन्हें रिश्वत आदि का लालच दिखाया, परन्तु वे अपने चरित्र से कभी नहीं गिरे, और एक बार लोभ देने वाले को दुबारा उनके पास जाकर लोभ देने की बात का ज़िक्र तक करने का साहस न हुआ। न कभी किसी ने उनकी ईमानदारी के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उनकी रहन-सहन अत्यधिक सादा थी। उनका यह नियम था, कि वे अपने घर में एक दिन से अधिक के लिए खाने को नहीं रखते थे। (१) वे इतने धर्मात्मा और न्याय-प्रिय थे कि जब रघुनाथराव ने, माधवराव के भाई और उत्तराधिकारी पेशवा नारायणराव की हत्या में भाग लेने के अपराध का प्रायश्चित रामशास्त्री से पूछा, तो उन्होंने बड़ी निर्भीकता से कहा कि "इस पाप का प्रायश्चित तो तुम अपने प्राण दे कर ही कर सकते हो; क्योंकि अपने भावी जीवन में अब तुमसे यह पाप और तरह नहीं धोया जा सकता और इसी कारण न तुम और तुम्हारा राज्य ही अब फूले-फलेगा। रही मेरी बात, सो मैं अपने लिए तो यहां तक कह देता हूँ कि जब तक शासन की बागडोर तुम्हारे हाथ में है, तब तक मैं न तो तुम्हारी नौकरी स्वीकार करूँगा और न पूना में पैर ही रक्खूंगा।" अपनी इस बात पर वह अन्त तक कायम रहे और वाई के पास के एक गांव में अपने जीवन के शेष दिन उन्होंने एकान्तवास में बिता दिये। (२)

---

१ ग्रण्टडफ का इतिहास खण्ड २ पृ० २०८

२ ग्रैण्टडफ खण्ड २ पृ० २ ह०

नारायणराव जिसका कि खून किया गया था, अठारह वर्ष का एक युवक था। वह अपने सम्बन्धियों को बहुत प्यारा तथा अपने नौकर-चाकरों के प्रति बहुत कृपालु था। वह इतना भला था कि उसके दुश्मनों को छोड़कर सब कोई उसे प्यार करते थे।

हैदरअली और टीपू

सुप्रसिद्ध हैदरअली माधवराव का समकालीन तथा शत्रु था। माधवराव ने लड़ाई में उसे कई बार बुरी तरह हराया था। परन्तु ज़ार पीटर की भांति उसने अपनी हार की परवा नहीं की, और बड़प्पन पाने की इच्छा से इससे भी बुरी परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार हो गया। अपने मालिक, मैसूर के राजा से राज्य छीन कर तथा लगातार विजय प्राप्त करता हुआ वह, उत्तर से दक्खिन चार सौ मील लम्बे तथा तीन सौ मील चौड़े घनी बस्ती वाले राज्य का मालिक बन बैठा। उसके पास तीन लाख सेना थी। और उसके राज्य की आमदनी लग भग सात करोड़ पचास लाख रुपये सालाना थी। यद्यपि वह लगातार लड़ाइयों में लगा रहा, तौभी अपनी प्रजा की उन्नति और अपने राज्य में सु-व्यवस्थित शासन-प्रणाली बनाये रखने के लिए सदा चिन्तित रहा करता था। उसके राज्य के प्रत्येक भाग में क्या व्यापारी और क्या कारीगर सभी खुशहाल थे। खेती में तरक्की हुई, नये-नये कारीगर तथा कारखाने खोले गये, जिसके कारण राज्य में धन का प्रवाह बहने लगा। राज्य के कर्मचारियों तथा अफसरों की लापरवाही और अधिकारों के दुरुपयोग के प्रति वह बड़ा कठोर था। मुल्की अधिकारी उससे सदा भयभीत ही रहते और थरति

हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे। ज़रा से ग़बन या धोखे के लिए उन्हें कड़ी-से-कड़ी सज़ा दी जाती थी। अपने राज्य के कोने-कोने पर तथा हिन्दुस्तान के प्रत्येक देशी राजा पर सदा उसकी नज़र रहती थी। राज्य में होने वाली प्रत्येक छोटी से छोटी बात का उसे पता रहता; सुदूर राज्य के भागों में होने वाला ज़रा सा काम भी उसके नज़र से न छिप सकता था। उसके पड़ोसियों की थोड़ी भी काना-फूँसी या इच्छा ऐसी न होती जो उसके पास न पहुँच जाती हो। एक-एक करके उसके सब सेक्रेटरी रोज़ आये हुए सब पत्र पढ़ कर उसे सुनाते, और चूंकि स्वयं लिखने में वह असमर्थ था, इस लिए संक्षेप में उन सबका जवाब वह लिखा देता, जो कि उसी समय लिख कर उसे सुना दिया जाता और तुरंत ही रवाना भी कर दिया जाता। प्रत्येक बात की बारीक़ से बारीक़ तफ़सील को ख़ूब अच्छी तरह विचारने और साहस के साथ उसे पूरा करने के रहस्य को वह भली-भाँति जानता था।

उसके अध्यवसाय और काम को झटपट निपटा देने की शक्ति की तुलना तो केवल उसकी स्वराज्य पर-राज्य से सम्बन्ध रखने वाली तथा नित्य होने वाली ताजी से ताजी घटनाओं की संपूर्ण जानकारी रखने की शक्ति से ही की जा सकती थी। शासन-संचालन में बिना व्यर्थ की कार्यवाही बढ़ाये काम निपटाने तथा निर्णय-शक्ति में तो वह मानव-जाति के इतिहास में केवल अद्वितीय ही था।*

*हैदर के इस चरित्र-चित्रण के लिए कर्नल फलर्टन लिखित View of the Interest of India और विल्क की History of India खण्ड २ रा देखिए।

हैदरअली, अपने हाथों से लबालब भरा हुआ एक खजाना, अपने हाथों खड़ा किया हुआ एक शक्तिशाली साम्राज्य, और तीन लाख सैनिकों की स्वयं तैयार की हुई सुसंगठित विजयोत्सुक सेना अपने बेटे टीपू सुल्तान के लिए छोड़ गया था। और उस समय के इतिहास-लेखकों तथा प्रत्यक्ष द्रष्टाओं का कहना है कि टीपू सुल्तान को जो विरासत अपने पिता से मिली थी, वह उसके-शासन काल में किसी प्रकार भी कम नहीं हुई थी।

"जब कोई किसी अपरिचित देश में जाय वहां की भूमि को भली प्रकार जोती-बोई पावे वहां के निवासियों को उद्यमी देखे नये-नये शहरों, बढ़ते हुए व्यापार-धन्धों, तरक्की करते हुए, नगरों, और हर बात में उन्नति देखे, तो वह निश्चय ही इस नतीजे पर पहुँचेगा कि यहां का शासन लोगों की इच्छा के अनुकूल है। टीपू सुल्तान के देश का यही चित्र है और उसके शासन के संबंध में हम जिस नतीजे पर पहुँचे वह भी यही है। भाग्यवश टीपू के राज्य में हमें कुछ दिन ठहरना पड़ा था; और यदि अधिक नहीं तो लड़ाई के दिनों में घूमने वाले अन्य अफ़सरों के इतना तो अवश्य ही हमें उसके राज्य में होकर सफ़र करनी पड़ी थी। इसीलिए ऐसा मान लेने के लिए हमारे पास काफ़ी सबूत है कि उसकी प्रजा उसके शासन-काल में इतनी सुखी थी, जितनी कि किसी भी दूसरे राजा की प्रजा हो सकती है। क्योंकि हमने उन्हें किसी प्रकार की शिकायतें करते नहीं देखा। अगर शिकायतें होतीं ही तो, टीपू की प्रजा के लिए, टीपू की शिकायत करने का वह सब से अच्छा अवसर था; क्योंकि उस समय टीपू के दुश्मनों के हाथों में काफ़ी शक्ति थी और उस समय उसके चरित्र

पर लोगों को आक्षेप करते देख कर उन्हें खुशी ही होती। विजित देशों की प्रजा विजेताओं की आज्ञा का चुपचाप पालन करती थी। परन्तु उससे यह पता हरगिज़ नहीं चलता था कि उनके कंधे से किसी अत्याचारी या दुःखदाई सरकार के जुँए का बोझ हटा दिया गया है। परन्तु इसके ठीक विपरीत ज्योंही उन्हे कभी कोई अवसर प्राप्त होता, वे झट अपने नये प्रभुओं को दूधकी मक्खी की तरह निकाल फेंकते और अपने पुराने राजा के अनुयायी बन जाते।"*

"यातो हैदर की नई शासन-पद्धति के कारण, या टीपू के सुचरित्र और सिद्धान्तों की वजह से, अथवा राज्य पर अधिक दिनों से कोई आक्रमण न होने के कारण, और या फिर इन सब कारणों के संयुक्त फल से टीपू के साम्राज्य में हर जगह खूब आबादी थी, जोतने-बोने योग्य सारी जमीन फसल से हरी-भरी थी। उसकी अन्तिम पराजय तक उसकी सेना में अनुशासन और वफ़ादारी देखने में आई, जो उसकी सेना की सुव्यवस्था का सबूत था। उसकी सरकार यद्यपि कठोर और निरंकुश थी, परन्तु वह निरंकुशता एक ऐसे नियमनिष्ठ और योग्य शासक की निरंकुशता थी, जो अपनी प्रजा को सताती नहीं, बल्कि उसका पालन-पोषण करती है। क्योंकि उसी प्रजा पर तो आखिर उसकी भावी उन्नति और युद्धों की विजय निर्भर थी। वास्तव में वह उन्हीं लोगों के साथ निर्दयता का व्यवहार करता था, जिन्हें वह अपना शत्रु समझता था।"†

---

* मूर लिखित टीपू सुलतान के साथ किये गये युद्ध की कथा पृ० २०१

† Dirom's "Narrative P, 249

पर यह मान लेना भी एक बड़ी भारी भूल होगी कि लोगों की इस सम्पन्न अवस्था का सारा श्रेय हैदर या उसके बेटे को ही है। उनके पचास वर्ष का अल्प शासन-काल इतने बड़े काम के लिए नगण्य-सा था। इस काम की नींव हैदर से पूर्व के हिन्दू राजाओं ने डाली थी। जिन्होंने बहुत सी बड़ी-बड़ी नहरें बनवाई थीं, जो मैसूर राज्य को कई भागों में बाँटे हुए हैं। इनकी सिंचाई के कारण किसानों के खेतों की पैदावार निश्चित और विपुल हो गई है।*

नन्दनवन की शोभा

अंगरेज़ी सरकार और उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्दी हैदरअली भारतवर्ष के राजनैतिक रंग-मंच पर एक ही साथ अवतीर्ण हुए। जिस वर्ष हैदरअली ने मैसूर में वहां के असली राजा से राज्य छीन कर, अपना राज्य स्थापित किया था, उसी वर्ष मुग़ल-साम्राज्य का सब से अधिक मूल्यवान और चमकता हुआ रत्न बङ्गाल, हमारे कब्जे में आया। यद्यपि बङ्गाल उस समय मरहठों के एक नाज़े

---

* मैसूर की कितनी ही नहरें तो इतनी बड़ी हैं, जिनमें व्यापारी नौकाएँ तक आ जा सकती हैं। उनको बड़े ही कौशल के साथ पहाड़ियों और कभी कभी खोहों के ऊपर से ले गये हैं, जहां ढाल इतना कम है कि पानी भी मुश्किल से बह सकता है। वे उस सारी जमीन को सींचती हैं जो उनके और नदी के बीच में पड़ती है। ये नहरें बहुत पुरानी हैं, श्रीरंगपट्टम को जो नहर पानी देती है वह इन सब में अर्वाचीन है। वह शिवदेवराज ओवादार के द्वारा बनाई गई थी और सन् १६९० में समाप्त हुई थी। राज्य के शासन सम्बन्धी कई दीवानी क़ानून भी इन्होंने ही बनाये हैं।

आक्रमण की मार से सम्हल नहीं पाया था, फिर भी क्लाइव ने इस नवीन प्राप्त देश को "अटूट सम्पत्ति से परिपूर्ण" एवं ऐसा देश बताया है* जो अपने स्वामियों को संसार में सब से अधिक सम्पत्ति शाली बनाये बिना रह नहीं सकता। मि०मैकाले का कहना है कि मुसलमान अत्याचारी शासकों और मरहठों की लूट-खसोट के रहते हुए भी पूर्वीय देशों में बङ्गाल, "नन्दनवन" यानी अत्यधिक समृद्धि-शाली प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध था† । उसकी जन संख्या बहुत बढ़ गई थी । बंगाल के अन्न की पैदावार इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि दूर दूर के प्रान्त बङ्गाल के छलकते हूए अन्नागारों से अपना पेट पालते थे । इसके अतिरिक्त लण्डन तथा पैरिस के उच्चतम घरानों की महिलायें बङ्गाल के करघों पर बुने हुए नाजुक महीन कपड़ों से अपना तन ढकती थीं।

बंगाल में सतयुगी शासन

भारतवासियों के शासन में बंगाल की स्थिति कैसी थी इसका वर्णन एक और दूसरे लेखक ने भी किया है वह यदि भारतवर्ष में अनेक वर्षों तक न रहा होता और इस विषय से वह भलीभाँति परिचित न होता तो हम उसकी बात को बनावटी और

---

* क्लाइव का जीवन चरित्र ।

† उस जमाने में लोगों के पास कितना धनरहता था इसके प्रमाण में एक ही उदाहरण देना काफी होगा । सन १७४२ की मराठों की चढ़ाई में बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद के जगतसेठ की दूकान लूटी गई । जिसमें नगद २५,००.००० मुद्राएँ मराठों को मिली। डफ लिखित मराठों का इतिहास खंड २ पृष्ठ १२ ।

अत्युक्ति पूर्ण समझते। मि० हालवैल कहते हैं कि "वास्तव में इन लोगों को सताना एक बड़ी भारी निर्दयता होगी; क्योंकि इस प्रान्त में प्राचीन भारतीय-शासन की सुन्दरता, पवित्रता, धार्मिकता, नियमितता निष्पक्षता और प्रबन्ध की कठोरता के चिन्ह अभी तक पाये जाते हैं। यहां के लोगों की सम्पत्ति और स्वतंत्रता सुरक्षित है। यहां खुली या छुपी दुकी लूट-मार और डकैती का नाम तक नहीं सुना जाता। मुसाफिरों की रक्षा को सरकार अपना प्रधान कर्तव्य समझती है। उनकी रक्षा के लिए सरकार की ओर से, एक स्थान से दूसरे स्थान तक सिपाही मिलते हैं। फिर चाहे उनके पास कोई कीमती माल हो चाहें न हो। उनकी रक्षा और उनके ठहराने की जिम्मेदारी भी इन्हीं सिपाहियों पर होती है। एक मंजिल के सिपाही दूसरी मंजिल पर पहुँचने पर मुसाफिर को, बड़े आदर, और उदारता पूर्वक दूसरी मंजिल के सिपाहियों के सुपुर्द कर देते हैं। ये सिपाही, मुसाफिर से उसके साथ पिछली यात्रा में सरकारी सिपाहियों द्वारा किये गये व्यवहार के विषय में कुछ पूछ-ताछ करते, तथा उन सिपाहियों को मुसाफिर के साथ अच्छा व्यवहार करने और सब सामान के उसे अपनी रक्षा में लेने का दाखला देकर छुट्टी दे देते थे। यह प्रमाणपत्र या दाखला पहली मंजिल के प्रधान अफसरों को दिया जाता था और अपने यहां उसकी लिखा-पढ़ी करके राजा को नियमित रूप से इस बात की रिपोर्ट भेजा करते थे।"

"इस प्रकार मुसाफिर के सफ़र का प्रबन्ध किया जाता है। अगर वह केवल सफ़र करता है तो उसके खाने-पीने, सवारी तथा माल-असवाब की ढुवाई का खर्च उसे कुछ नहीं देना पड़ता।

परन्तु बीमारी और आकस्मिक घटना को छोड़ कर यदि वह किसी स्थान पर तीन दिन से अधिक ठहरता है, तो उसे वहां अपना खर्चा देना पड़ता है। अगर इस प्रांत में किसी की कोई चीज़, मसलन रुपये-पैसों की थैली या अन्य क़ीमती चीज़ें गुम जाती हैं तो पाने वाला उन्हें नज़दीक के किसी पेड़ पर टांग देता है, और उसकी सूचना पास की पुलिस-चौकी में कर देता है। और चौकी का पुलिस अफ़सर ढोल पिटवाकर उसकी सूचना सर्व साधारण से करवा देता है।"*

शासन-नीति दया शील होने के कारण और उस पर बुद्धि तथा दूरदर्शिता के साथ अमल होने के कारण ढाके का प्रान्त समृद्धि शाली था। प्रत्येक भाग में खेती होती थी और उसके निवासियों के आराम तथा आवश्यकता की सामग्री वहां काफ़ी तादाद में पैदा होती थी। लोगों को निष्पक्ष न्याय मिलता था। वहां के सूबा गुलाब अलीखां और जसवन्तराय के उज्वल चरित्र ने उनके स्वामी सरफ़राजखां के शासन के लिए अच्छा नाम पैदा किया था जसवन्त राय ने नवाब अलीखां से ही शिक्षा पाई थी। और नवाब अलीखां के चरित्र की पवित्रता, ईमानदारी, काम करने की अथक लगन आदि गुणों को उसने अपने चरित्र में ढाला था। इस तरह उसने शासन-प्रबन्ध की एक ऐसी पद्धति का अध्ययन किया था, जिसके द्वारा जनता के आराम और सुख की वृद्धि हो सके। उसने व्यापार के एकाधिकार को नष्ट कर दिया था और अन्न-कर को उठा दिया। †

---

* Holwelts Tractys Upon India

† स्टयूअर्ट लिखित बंगाल का इतिहास पृ० ५२०

बङ्गाल की यह अवस्था अलीवर्दीखां के शासन-काल में थी। अलीवर्दीखां "ब्लेक होल" की स्मृति के सम्बन्ध में बदनाम सिराजुद्दौला का पूर्वाधिकारी और नाम मात्र के लिए दिल्ली के बादशाह का गवर्नर था। यद्यपि उसका चरित्र अच्छा नहीं था और उससे कुछ घृणित कुकृत्य भी बन पड़े थे, परन्तु फिर भी उसके शासन-काल में देश की बहुत बड़ी उन्नति हुई थी। उसने अपने अनेक योग्यतर सम्बन्धियों तथा दोस्तों को राज्य के जिम्मेदारीपूर्ण पदों पर नियुक्त कर रक्खा था। पर अगर उनमें से कोई असावधानी या अत्याचार करता हुआ पाया जाता तो वह उसे तुरन्त बरखास्त कर देता। योग्यता और उत्तम चरित्र ही उसके लिए प्रमाण-पत्र थे। अपनी सारी प्रजा को वह एक ही ईश्वर के पुत्र-पुत्री समझता था और हिन्दुओं को मुसलमानों के बराबर का ही स्थान देता था, और मंत्री-पद के लिए सदा हिन्दुओं को ही वह चुनता। फौज तथा मुल्की शासन के काम में ऊँचे ऊँचे पदों पर भी वह हिन्दुओं को नियुक्त करता। इस लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं, कि हिन्दुओं ने उसकी तथा उसके परिवार की बड़े उत्साह और स्वामि-भक्ति के साथ सेवा की। उसके शासन-काल में प्रान्त में वसूल किया गया कर देहली के सुदूरस्थ खज़ाने को भरने की अपेक्षा वहीं पर खर्च कर दिया जाता। यह एक बहुत बड़े लाभ की बात थी. और यही कारण था कि उसके राज्य-काल में प्रजा इतनी धन्य-धान्य पूर्ण थी। उस समय समृद्धि, शान्ति और व्यवस्था का सर्वत्र साम्राज्य था। प्रान्त के किसी सुदूरस्थ कोने से किसी कट्टर और बागी ज़मीदार के कभी कभी के बखेड़े को छोड़कर, प्रजा

की गहरी और सार्वभौम शान्ति में कभी विघ्न पड़ता ही नहीं था।*

सिर्फ़ दस वर्ष में काति !

परन्तु अंग्रेज़ी शासन में आने के दस वर्ष के भीतर ही बङ्ग प्रदेश की स्थितिः में भारी परिवर्तन हो गया था।

मि० मैकाले का कहना है कि "कुछ समय तक तो बङ्गाल से आने वाला प्रत्येक जहाज़ बड़े भयानक समाचार लाया करता था। प्रान्त का आन्तरिक कुशासन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। ऐसे सरकारी नौकरों से क्या आशा की जा सकती थी, जिनके सामने लार्ड क्लाइव के शब्दों में ऐसे प्रलोभन थे, जिनका प्रतिकार, रक्त और मांस का बना हुआ यह शरीर किसी प्रकार भी नहीं कर सकता था ? उस समय भारत-स्थित अंगरेजों के हाथों में दुर्दमनीय शक्ति थी, और वे उत्तरदायी थे एक ऐसी पतित, उपद्रवी, और अशान्त कम्पनी के प्रति, जिसे यहां की पूरी खबरें मिलतीं ही नहीं थीं। कैसे मिलतीं ? वह इतनी दूर थी, कि उसके पास यदि कोई समाचार भेजा जाता तो उसके पहुँचने और उत्तर आने में डेढ़ साल से भी अधिक समय लग जाता। इसका फल यह हुआ था कि क्लाइव के चले जाने के बाद पांच वर्ष में बङ्गाल में अंग्रेजों का कुशासन उस चरम सीमा तक पहुँच गया था, जिसे देखकर यह आश्चर्य्य होता था, कि इतने कुशासन के होते हुए भी समाज का अस्तित्व कैसे बना हुआ है। एक रोमन राजदूत की बात है, उसने एक—

---

* स्टुअर्ट लिखित बंगाल का इतिहास

दो साल के अन्दर ही एक प्रान्त से इतना धन चूस लिया कि जिससे उसने कैम्पेनिया नदी के किनारे नहाने के लिए घाट और रहने के लिए संगमरमर के महल बनवाये, और वह अन्त तक उनकी शान-शौक़त और चमक-दमक को कायम रख सका। उसने इतना धन खींच लिया था कि जिससे वह हमेशा उत्तमोत्तम शराब पीता था, और मांस खाता सो भी गाने वाली चिड़ियों का ही। विदूषकों की एक फौज की फौज और जिराफों के भुण्ड के भुण्ड वह रखता था। एक स्पेनिश वाइसराय जिसने मैक्सीको और लीमा पर अनेक और अभूत पूर्व अत्याचार किये थे. वहां की जनता के शापों को वहीं छोड़कर वह अपनी जन्म-भूमि मैड्रिड में सोने-चांदी के काम से चमकती हुई गाड़ियां. बड़े बड़े घोड़े, जिनके खुर चांदी से मढ़े हुए थे, लेकर लौटा था। पर इन दोनों की यह सब लूट-खसोटें बङ्गाल में पांच वर्ष के अन्दर की गई इस लूट खसोट के सामने न-कुछ थीं। हां, कम्पनी के कर्मचारियों के अन्दर अनेक अवगुण तो थे परन्तु निर्दयता नहीं थी। लेकिन अनीति से धनवान होने की उन्हें बड़ी उत्सुकता थी। और इसने जो बुराइयां उनके अन्दर पैदा कर दीं वे निरी निर्दयता से न होतीं। उन्होंने अपने बनाये नवाब मीरजाफर को गद्दी से उतार कर उसकी जगह पर मीरक़ासिम को सिंहासनारूढ़ कर दिया था।

लेकिन मीरक़ासिम योग्य और निश्चयी था। और यद्यपि वह स्वयं अपनी प्रजा पर अत्याचार करने का इच्छुक था, परन्तु वह अपनी प्रजा को उस अत्याचार से पिसते हुए नहीं देख सकता था कि जिससे उसे कोई लाभ न हो। बल्कि जिससे उसकी आय के सोतेपर ही कुल्हाड़ी पड़ती हो। इसी लिए अंग्रेजों ने

मीरक़ासिम को भी गद्दी से उतार कर उसकी जगह पर मीर-जाफ़र को फिर बिठा दिया। मीरक़ासिम ने इसका बदला एक ऐसा हत्या काण्ड करके लिया कि उसके सामने "ब्लैक होल" की क्रूरतायें भी मात हो गईं, और इसके पश्चात् वह अवध के नवाब की राजधनी में भाग गया। इन भारी क्रान्तियों में गद्दी पर बैठने वाला नया नवाब अपने से पहले शासन करनेवाले नवाब के खजाने में जो कुछ भी उसे मिलता उसे, अपने विदेशी मालिकों के साथ मिलकर बांट लेता। उसके राज्य की बहु संख्यक जनता उन लोगों के हाथ का शिकार बन जाती, जो उसे गद्दी पर बिठाते और फिर उतारने की भी शक्ति रखते थे। कम्पनी के कर्मचारियों ने अपने मालिकों के लिए नहीं, प्रत्युत अपने लिए लगभग समस्त आन्तरिक व्यापार का एकाधिकार प्राप्त कर लिया था। वे इस देश के निवासियों को मंहगा खरीदने तथा सस्ता बेचने के लिए बाध्य करते थे। देशी शासकों के कर-विभाग के अधिकारियों अदालतों और पुलिस का वे बड़ी निरंकुशता के साथ अपमान करते। क्योंकि उन्हें सज़ा का कोई डर न था। अपनी रक्षा में उन्होंने कुछ ऐसे देशी गुण्डे रख छोड़े थे जो प्रान्त भर में घूमते और जिस स्थान पर पहुँचते उसे लूट लाटकर प्रजा पर आंतक का साम्राज्य फैला देते। कम्पनी में काम करने वाले प्रत्येक शख्स के नौकरों की पीठ पर कम्पनी की सारी शक्ति रहती थी। इस प्रकार कलकत्ते में तो विपुल सम्पत्ति इकट्ठी कर ली गई, तहां दूसरी ओर तीन करोड़ भारतवासियों को दुरवस्था की चरम सीमा को पहुँचा दिया गया था। वे बहुत दिन से अत्याचार सहने के अभ्यासी अवश्य थे, परन्तु इस प्रकार के अत्याचार के

नहीं। कम्पनी के छोटे से छोटे नौकर से भी वे इतना डरते जितना सिराजुद्दौला से भी नहीं। अपने पुराने शासकों के समय में उनके पास कम से कम एक उपाय तो था। जब बुराई असह्य हो जाती, तब लोग बलवा करके सरकार को नष्ट भ्रष्ट तो कर सकते थे। परन्तु अंगरेज़ी सरकार ने इस तरह की गुंजाइश नहीं रक्खी थी। जंगलियों की घोर निरंकुशता के साथ-साथ यह तो उन सारी शस्त्र-सामग्री से सुसज्जित थी जो आधुनिक सभ्यता उसे दे सकती थी।†

मैसोर की शासन-व्यवस्था।

पुर्णैया के सुप्रबन्ध के कारण ही मैसूर राज्य की, लगान से होने वाली आमदनी में इतनी वृद्धि हो सकी है। उन्होंने तालाबों और नहरों की मरम्मत करादी है, अनेक सड़कें और पुल बनवा दिये हैं, परदेशियों को मैसूर राज्य में आने तथा वहां बस जाने के लिए हर प्रकार का उत्साह प्रदान किया है, और अपने राज्य के अन्दर खेती की उन्नति तथा जन-साधारण की दशा सुधारने के लिए पूरा पूरा ध्यान दिया है।*

नाना फड़नवीस।

दीवान पूर्णैया के समकालीन नाना फड़नवीस थे। नाना फड़नवीस दीवान पुर्नैया से किसी बात में भी कम न थे। इन्होंने बाजीराव के बाल्यकाल में लगभग पचीस वर्ष तक पेशवा के

---

†लार्ड क्लाइव पर मेकाले का निबन्ध।

*मैसोर पर सरकारी रिपोर्ट १८०४, एशियाटिक वार्षिक रजिस्टर, १८०५,

प्रदेश का शासन किया था। इस महान राजनीतिज्ञ के चरित्र के वर्णन करने का यदि प्रयत्न किया जाय तो पिछले पचीस वर्ष की मराठों के राजनैत्तिक इतिहास की घटनाओं की तफसील में पड़ना होगा। इस बीच में इन्होंने मंत्री के कर्त्तव्य का पालन जिस योग्यता से किया, उसका उदाहरण नहीं मिलता। अपने शासन काल के लम्बे और आवश्यक समय में अपने अकेले दिमाग़ के ही बल-बूते पर उन्होंने ऐसे विशाल साम्राज्य के भार को सँम्हाला था जिसके अंग रूप सभ्यों के हित एक-दूसरे के विरोधी थे। एक ही साथ में कई कामों को अपने हाथ में ले लेने की प्रतिभा, बुद्धिमानी और दृढ़ता तथा शासन की उदारता आदि अनेक विचित्र गुणों के कारण उन्होंने इन असमान स्वभाव वाले लोगों को एक ही सर्व हितकारी काम में लगा दिया, जिसमें वे एक दूसरे की नीति का विरोध करने के बजाय परस्पर सहायता करने लग गये। उनकी नीति साधक प्रचुर और दूरदर्शी होती थी जिसमें विश्वास और निराशा की अति के लिए स्थान ही नहीं होता था। वे इतने प्रत्युत्पन्न मतिवाले थे, कि आने वाले प्रत्येक अनपेक्षित घटना के लिए वे तैयार रहते और फौरन उसका उपाय भी सोच लेते थे। ※

मराठों के साम्राज्य में।

इस सुविख्यात पुरुष द्वारा दीर्घ-काल तक शासित प्रदेश का इस पुरुष की मृत्यु के कुछ ही वर्ष बाद स्वर्गीय सर जौन

※ एशियाटिक वार्षिक रजिस्टर खंड ५ पृ० ७० स्फुट उद्धरण
Vol. V. 70 miscebaneous extracts

माल्कम ने निरीक्षण किया था। उसकी दशा का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं:—

"सन १८०३ में ड्यूक ऑफ़ वैलिंग्टन के साथ मुझे दक्षिण महाराष्ट्र देखने का अवसर मिला था। उस प्रदेश के समान उपजाऊ भूमि और वहां की भूमि की हर प्रकार की पैदावार तथा व्यापारिक सम्पत्ति मुझे अन्य किसी दूसरे देश में आज तक कभी देखने को नहीं मिली। यहां पर मैं विशेष कर कृष्णानदी के किनारे की भूमि के विषय में संकेत करता हूँ। पेशवाओं की राजधानी पूना, एक अत्यन्त समृद्धिशाली और उन्नतिशील व्यापारिक शहर है। बंजर और अनुपजाऊ जमीन में जितनी खेती हो सकती है उतनी दक्षिण में मैंने देखी।"*

महाराष्ट्र सल्तनत का एक बहुत बड़ा भाग मालवा कहलाता है। यह पहले समय में और आजकल भी होल्कर घराने के शासनान्तर्गत है। मालवा और उसके कुछ शासकों के चरित्र के संबंध में हमारे पास उपर्युक्त प्रतिष्ठित द्रष्टा द्वारा कुछ अनुकूल प्रमाण मौजूद हैं। वे लिखते हैं:—

"मालवा को मैंने नष्ट-भ्रष्ट दशा में पाया। पचास वर्ष से अधिक समय तक उस सुन्दर भूमि में मरहठों की फौजों का अधिकार रहने से तथा पिंडारी और भारत की अन्य लुटेरी जातियों से मालवे की बड़ी बरबादी हुई थी।

---

* कमिटी ऑफ कॉमन्स. के सामने दिये गये बयान से। सन् १८३२ पृ० ४१।

Evidence Before Cmmittee of Commons, 932

इस अवस्था में दूर से हम ऐसे देशों की अवस्था के संबंध में जो कल्पना करते हैं उसमें और उनकी प्रत्यक्ष आंखों देखी अवस्था में अन्तर था। उसे देख कर मैं बड़ा चकित हुआ। मुझे इस प्रदेश में फौजी और मुल्की शासन के सब अधिकार प्राप्त होने से, सरकारी कागजातों तथा अन्य दूसरे साधनों द्वारा, उसकी वास्तविक दशा को अध्ययन करने का पूरा अवसर मिला। अतः जिस समय मैंने अपने काम को हाथ में लिया उस समय मुझे तो सचमुच यह पूरा विश्वास था कि यहां पर व्यापार का नाम-निशान भी न होगा और ऐसे प्रान्त में, जो कि बहुत लम्बे समय तक, अपनी भौगोलिक परिस्थिति के कारण पश्चिमी भारत के समृद्धप्रान्त और हिन्दुस्तान के समस्त उत्तर-पश्चिमी प्रान्त तथा सागर और बुन्देलखण्ड के बीच होनेवाले व्यापार का मध्यवर्त्ती केन्द्र था; अब वीरान हो रहा होगा और वहां वह अपनी साख तक खो चुका होगा। परन्तु मैं तो यह देख कर दंग रह गया कि उज्जैन तथा दूसरे शहरों से राजपूताना, बुन्देल-खण्ड, युक्त प्रान्त और गुजरात का जहां पर कि पहली श्रेणी के सेठ-साहूकार बड़ी-बड़ी रक़मों का व्यापारिक लेन-देन चल रहा था। यहां चरित्रवान तथा बड़ी साखवाले व्यापारी और साहूकार बसते थे। एक देश का माल यहां होकर दूसरे देश को जाने के अलावा, यहां पर बीमे का जो कि सारे भारतवर्ष में फैला हुआ था यहां काम भी बराबर जारी था ? इसमें बड़े-बड़े सेठ साहूकार शामिल थे। हां, खतरे के समय क़िश्त की रकम अवश्य बढ़ जाया करती थी। हमारे शस्त्रास्त्रों द्वारा शान्ति स्थापित हो जाने के बाद मालवा की सरकार को केवल इसी बात की आव-

श्यकता रह गई थी कि वहां के निवासी अपने देश को वापिस लौट आवें। सभी भारतीयों की भाँति मालवा के निवासियों में भी अपने देश के प्रति प्रेम था। अतः शान्ति स्थापित होते ही वे तुरन्त वापस आकर बस गये। हमने अपने शस्त्रास्त्रों के बल से वहां के पुराने नरेशों के राज्य की पुनः स्थापना कर दी थी। हम बाहरी आक्रमणों से इनकी रक्षा करते थे. परन्तु अपने आन्तरिक शासन में वे बिलकुल स्वतन्त्र थे। लेकिन मेरा इस बात में कतई विश्वास नहीं है कि देशी नरेशों के सीधे शासन द्वारा इस देश में कृषि और व्यापार की जो उन्नति हुई है, उससे अधिक उन्नति होना तो दूर रहा, उसके बराबर उन्नति भी हमारे सीधे शासन द्वारा वहां हो जाती। दक्षिणी महाराष्ट्र प्रान्तों की समृद्धि के विषय में तो मैं पहले ही लिख चुका हूँ। इसलिए यदि यहां पर मैं बाजीराव के पिछले कुछ वर्षों के कुशासन से पूर्व की अवस्था का वर्णन करूँ तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि हमारे शासन में वहां के व्यापार और खेती की इतनी उन्नति कदापि नहीं हो सकती। परन्तु हमारे शासन में उन्हें जो सब से बड़ी नियामत प्राप्त है, वह यह है कि हमारी आधीनता में युद्धों के कष्टों से उनकी रक्षा हो गई है। इस आनन्द का लाभ सब लोग समान रूप से उठाते हैं। लेकिन मुझे यहां पर निस्संकोच होकर यह भी कह देना चाहिए कि, पटवर्द्धन घराने के आधीन तथा कुछ अन्य नरेशों द्वारा शासित कृष्णातट के प्रदेश भारतवर्ष के अन्य किसी भी प्रान्त के मुक़ाबले में, व्यापार तथा कृषि में सब से अधिक उन्नतावस्था में हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो उनकी सुव्यस्थित शासन-पद्धति है। यद्यपि वहां पर, कभी-

कभी अनुचित रूप से रुपया वसूल कर लिया जाता होगा, परन्तु साधारणतया उनका शासन सौम्य और पितृवत् है। दूसरा कारण है हिन्दुओं का ज्ञान और खेती तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी कामों में उनकी रुचि-बल्कि श्रद्धा, तीसरा कारण है उनकी समझदारी अथवा शासन के अनेक विभागों में कम से कम हम से अधिक योग्यता पूर्वक काम करने की शक्ति। और ख़ास कर पूँजीपतियों को उत्साहित करके तथा ग़रीबों को सूद पर रुपया देकर शहरों और देहातों को समृद्ध बनाने में वे बहुत कुशल हैं। इसका एक कारण यह भी है और वह सब से अधिक महत्त्व-पूर्ण है कि जागीरदार लोग अपने जागीर में ही रहते हैं। इन प्रान्तों का शासन इन्हीं उच्चकोटि के स्थानीय आदमियों द्वारा होता है। जो वहीं काम करते-करते जीते और मरते हैं। इन जागीरदारों की मृत्यु के पश्चात उनकी जागीर के मालिक प्रायः उनके पुत्र-पौत्र और सम्बन्धी ही होते हैं। अगर संयोगवश ये लोग कभी-कभी निरंकुशता-पूर्वक प्रजा से धन खसोट भी लेते हैं, तो उनका सारा खर्च, और उन्हें जो कुछ प्राप्त होता है वह, सब उनके प्रान्त की सीमा के अन्दर ही रहता है। परन्तु इस प्रदेश को समृद्धिशाली बनाने के अनेक कारणों में से सर्वश्रेष्ठ कारण यह है कि वहां पर सब वर्ग के लोगों को रोजगार मिलता है और देहातों तथा संस्थाओं को निश्चित रूप से सहायता दी जाती है। जिसकी कि हमारी शासन प्रणाली में कहीं गुंजाइश ही नहीं है। *

* Sir John Malcolm

अहल्याबाई-पवित्रतम शासक

"अपने राज्य के आन्तरिक प्रबन्ध में अहल्याबाई की सफलता अद्भुत थी। उसके राज्य को बाहरी आक्रमणों से जो मुक्ति और निश्चिन्तता प्राप्त थी उसकी अपेक्षा देश की निर्विघ्न आन्तरिक शान्ति अधिक उल्लेखनीय है। ऐसी शान्ति-पूर्ण अवस्था पैदा होने का कारण था शान्तिशील, उपद्रवी लुटेरों वर्ग के प्रति अहिल्याबाइ का यथायोग्य व्यवहार। शान्तिशील वर्ग के प्रति उसका प्रेम-पूर्ण व्यवहार रहता था। परन्तु उपद्रवी और लुटेरे वर्ग के प्रति उसका व्यवहार कठोर, किन्तु विचार-पूर्ण और न्यायी होता था "अपनी प्रजा की समृद्धि को बढ़ाना उसके जीवन का सर्वप्रिय उद्देश था। हमें पता चला है कि जब कभी वह साहूकारों, व्यापारियों और किसानों को सम्पन्न देखती तो बड़ी प्रसन्न होती। उनके धन को बढ़ता हुआ देख कर, उनसे खसोटना तो एक ओर, वह तो उन्हें अपनी कृपा और रक्षा का और भी अधिक अधिकारी समझती।......अहल्याबाई के आन्तरिक शासन नीति और उस पर अमल करने के लिए काम में लाये गये उपायों का विस्तार पूर्वक वर्णन करना तो असम्भव है। संक्षेप में यहां पर इतना कह देना ही पर्याप्त है कि मालवे की प्रजा एक मत होकर अहल्याबाई को सुशासन की साक्षात् प्रतिमा समझती है।......उसने कितने ही किले बनवाये थे। और विंध्याचल में जाम के पहाड़ पर तो बड़े परिश्रम और धन व्यय के साथ, एक सड़क बनवाई थी। जहां पर पहाड़ की

चढ़ाई बिलकुल सीधी है। उसके समकालीन भारतीय नरेश, उसके राज्य पर चढ़ाई करना, अथवा किसी दूसरे के द्वारा उसके राज्य पर आक्रमण होते देखकर उसकी रक्षा के लिए न दौड़ पड़ना तो महापाप समझते थे। सब लोग उसे इसी दृष्टि से देखते थे। पेशवाओं से लेकर दक्खिन के निजाम और टीपू सुल्तान तक उसे उसी श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते थे। और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों एक साथ होकर ईश्वर से उसकी चिरआयु और अभ्युदय के लिए प्रार्थना करते थे। अत्यधिक गंभीरता पूर्वक उसके चरित्र पर दृष्टिपात करने पर भी प्रतीत होता है कि वह एक अत्यन्त पवित्र और आदर्श शासक थी। उसके जीवन से यह उदाहरण और शिक्षा मिलती है कि मनुष्य को अपने सांसारिक कर्त्तव्यों का पालन करते समय किस प्रकार उनके लिए अपने को ईश्वर के समक्ष जिम्मेदार समझना चाहिए।"*

महाराष्ट्र प्रान्त के छोटे-छोटे देशी राज्यों के समूह में बरार के राजा भी थे। इनके राज्य में, प्रजा की वास्तविक दशा के सम्बन्ध में एक यूरोपियन यात्री ने अपनी आंखों देखा यह वर्णन लिखा है :—

"उस प्रान्त की सम्पन्नावस्था का पता उसकी राजधानी पर एक दृष्टिपात करने ही से चल सकता था। लेकिन बाद में जब हमें उस प्रान्त में होकर यात्रा करनी पड़ी तब तो वहां की प्रजा की समृद्धावस्था के विषय में और भी निश्चय हो गया। उसे देख कर मुझसे उस प्रदेश के प्राचीन राजाओं की प्रशंसा किये

---

*मालकम लिखित मध्यभारत का इतिहास खण्ड १ पृ० १७६-९२।

बिना नहीं रहा जाता। उस प्रदेश में नर्मदा नदी इतनी गहरी नहीं कि जल मार्ग से वहां व्याहार होसके। यह प्रदेश उसके लाभ से भी वे वंचित था। भीतरी व्यापार भी अधिक नहीं था। परन्तु प्रजा पालक नरेशों की छत्र-छाया में वहां के किसान खूब खेती करते थे, उनके घर सदा स्वच्छ रहते थे, वहां पर अनेक बड़े-बड़े मन्दिर, तालाब, तथा अन्य सार्वजनिक लाभ की अनेक चीजें थीं। वहां के नगरों का विस्तार, खेतों का साल में कई बार बोया जाना, आदि बातें निश्चय ही स्पृहणीय समृद्धि के चिन्ह हैं। इसका सारा श्रेय यहां की पहली सरकार को है। क्योंकि मरहठा नरेश तो अपने सुशासन के लिए अत्यधिक प्रशंसा के पात्र हैं। पहले शासन के लिए यह बात काफी प्रशंसा के योग्य है कि सागर नरेश के अपने बीस साल के शासन काल में और बरार के राज के अपने चार वर्ष के राज-काल में भी प्रदेशों की समृद्धि को कोई अधिक हानि नहीं पहुँची थी।"*

बरार प्रदेश में यात्रा करनेवाले एक दूसरे यात्री का कहना है कि "अब हमने एक हरे-भरे सम्पन्न प्रदेश में से होकर अपनी यात्रा प्रारम्भ की। आस-पास के पहाड़ों से निकलनेवाले नालों के जल से खेत भली प्रकार सिंचे हुए थे। इस प्रदेश में जंगल नहीं थे, चारों ओर गांव ही गांव थे और जगह-जगह पानी से भरे हुए तालाब और दरख्तों के झुण्डों के कारण भूमि बड़ी सुन्दर दिखाई देती थी। हमारी पहली सफर की कठिनाइयाँ अब बिलकुल नहीं रहीं। और इस प्रदेश की यात्रा में

*एशियाटिक सोसायटी के एक सभ्य के "१७९८ में मिर्जापुर से नागपुर का प्रवास" से एशियाटिक वार्षिक रजिस्टर, स्फुट ट्रैक्ट पृ० ३२

हमें जो आनन्द मिला उसका वर्णन करने की अपेक्षा उसकी कल्पना करना ही अधिक आसान है। इस प्रदेश में महाराष्ट्र-सरकार के सुशासन के कारण सफ़र में हमारे साथ हर प्रकार का आदर पूर्ण व्यवहार हुआ। यहां पर हमें हर प्रकार का अन्न काफी मात्रा में बहुत ही सस्ते मूल्य पर मिला जो कि यहां की उपजाऊ भूमि में पैदा होता था। और यद्यपि यहां पर भीतरी व्यापार के लिए सरकार की ओर से बहुत ही कम प्रोत्साहन मिलता था; क्योंकि सरकार सड़कों की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं देती थी, परन्तु फिर भी फसल के समय पर यहां से इतना माल बाहर जाता था कि करीब एक लाख बैल उसके ढोने में लगे रहते थे।*"

राजपूत राज्य

मरहठों के राज्य से अब हम राजपूत राज्यों की ओर आते हैं। और यहां भी हम एक प्रत्यक्ष द्रष्टा का ही निम्न लिखित बयान देते हैं ......"अवध के नवाब के किसानों की खेती के मुक़ाबले में मुझे अंग्रेज़ी राज्य के किसानों की खेती सदा उन्नत अवस्था में दिखाई पड़ी। परन्तु यह कह देना केवल न्याय युक्त ही है कि हिन्दू राजाओं द्वारा शासित छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में, कम्पनी द्वारा शासित प्रदेशों से खेती की पैदावार कहीं अधिक अच्छी थी। यहाँ के तेजस्वी स्वाश्रयी किसानों को देखकर यही प्रतीत होता था कि राज्य में उनके अधिकारों और सत्वों का अधिक ख्याल रक्खा जाता है। सन १८१० ई० में जब कम्पनी की फौज ने अंग्रेज़ी प्रदेश से बाहर कूच किया, तो अंग्रेज़ी सेना

---

* एशियाटिक एन्युअल रजिस्टर, खण्ड २, स्फुट ट्रैक्ट पृ० १६६।

ने टिहरी के राज्य में लगभग दो मास तक विश्राम किया। उस प्रदेश की समृद्धि और सम्पन्नावस्था को देख कर सारी फौज आश्चर्यान्वित हो गई थी।"*

"रामपुर राज्य से गुजरते हुए इस प्रदेश की खेती की अच्छी अवस्था हमारी नजर से छिप नहीं सकी। आस-पास के प्रदेशों से यहाँ की खेती कहीं अच्छी अवस्था में है; मुश्किल से ही कहीं पर खेती का कोई ऐसा हिस्सा मिलता जिसकी ठीक साल-सम्हाल न हो। यद्यपि मौसम अनुकूल नहीं था, फिर भी सारे प्रदेश में फसल से खेती लहलहाती हुई दिखाई देती थी। वर्त्तमान रीजेण्ट के बारे में हमें जो वर्णन मिला है उससे हम किसी प्रकार भी इस नतीजे पर नहीं पहुँच सकते कि उनके किसी व्यक्तिगत उद्योग से देश इस समृद्धावस्था को पहुँचा है। अतः हम इस समृद्धि के असली स्रोत को जानने को उत्सुक हैं। और यह मालूम कर लेना चाहते हैं कि आया इस उन्नति का कारण किसानों को जिन शर्तों पर जमीन दी गई थी वह हैं या जमीन सम्बन्धी व्यवस्था में ही कुछ ऐसी विशेष बातें थीं जिनकी ओर ध्यान देने से हमारे अंगीकृत कार्य्य में हमें सहायता मिल सकती थी। नवाब फैजुल्लाखां के प्रबन्ध की सर्वत्र प्रशंसा थी। यह प्रबन्ध एक ऐसे सुसंस्कृत और उदार मालिक का प्रबन्ध था जो प्रजा की समृद्धि बढ़ाने में अपना तन, मन, धन, लगा देता था। जब बड़े-बड़े महत्वपूर्ण काम करने होते, जिन्हें कोई व्यक्ति अकेला न कर सकता, तो उस कार्य्य को सम्पादन करने के साधन उसकी

---

* ह्वाइट लिखित ब्रिटिश भारत की दशा १८२२।

उदारता और दया द्वारा प्राप्त होजाते। उसने नहरें बनवाई थीं। नालों को कभी-कभी रोक कर उनके पानी से निकटवर्ती प्रदेशों की भूमि को उपजाऊ बनाया जाता था और प्रजा की रक्षा के लिए एक पितृवन् नरेश की भाँति वह सदा तत्पर रहता था। वह लोगों को उनके काम में उत्साहित करता था, उनको लाभ-दायक काम करने की सलाह देता था और उस काम को पूरा करने में हर प्रकार की सहायता भी देता था।

"इस प्रदेश का कुछ हिस्सा तो रुहेलों के अधीन था और कुछ हमारे अधीन। अतः हमारे अधीन प्रदेश और रुहेलों के अधीन प्रदेश की दशा का मुक़ाबला किया जाय और इस बात को एक तराज़ू में रख कर तौला जाय कि किसके राज्य में प्रजा को अधिक लाभ पहुँचा है, तो इस बात के विचार मात्र से ही कष्ट होता है कि भलाई का पलड़ा रुहेलों के पक्ष में ही झुकेगा। उस प्रदेश में, हमारे सात वर्ष के शासनकाल में शासन-प्रबन्ध की रिपोर्ट देखने से पता चलता है कि, कर में सिर्फ़ दो लाख की वृद्धि हुई है। परन्तु पार्लियामेंट में पेश की गई रिपोर्ट को देखने से पता चलता है कि पिछले बीस वर्ष में रुहेलखण्ड और अवध के नवाब से प्राप्त हुए जिलों की सम्मिलित आमदनी में दो लाख पौण्ड सालाना की कमी हुई है।

"हमारे आधीन प्रदेश के पड़ोसी प्रदेशों में, अधिक पूँजी और अधिक उद्योग धन्धों से पैदा हुई उन्नतावस्था में और हमारे अधीन प्रदेश की दशा में जो अन्तर था वह भी हमसे न छिप सका। पड़ोसी प्रदेश को देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि इस भूमि को किसी भारी आपत्ति ने वियाबान सा

बना दिया है। लेकिन उधर राजा दयाराम और भगवन्तसिंह के अधीन प्रदेशों की दशा बड़ी अच्छी थी। यद्यपि उस साल मौसम प्रतिकूल था परन्तु वहाँ पर खेती करने के उत्तम ढंग और अधिक परिश्रम के कारण खेत हरे-भरे दिखाई पड़ते थे। यहाँ पर हमें यह बात स्पष्ट कर देना चाहिए कि ऊपर जिस पास-पड़ोस की भूमि का जिक्र किया है, वह अंगरेजी प्रदेश का वह भाग है जिससे हमारे अधिकार में आये पूरे पाँच वर्ष हो गये थे।*

अवध के नवाब और उसके राज्य की की गई इतनी बुराइयों के बाद भी हमें अनेक विश्वसनीय प्रमाणों से पता चलता है। कि न तो नवाब का चरित्र ही उतना काला था और न उसके प्रदेश की दशा ही उतनी बुरी थी जितनी कि हमारे सरकारी अफ़सरों ने बताई है।

हेवर लिखते हैं कि अवध को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और साथ ही मेरे आश्चर्य का ठिकाना भी न रहा। क्योंकि अवध की दुरावस्था और वहाँ की प्रजा के कष्टों के विषय में मैंने जो कुछ सुना था उससे तो यही अनुमान होता था कि वहाँ की आबादी बहुत कम हो गई होगी और खेती भी बहुत कम होती होगी। परन्तु यहाँ पर मैंने देखा कि खेत पूर्णतया जुते-बुये थे और आबादी इतनी काफी थी कि अगर यहाँ की प्रजा मेरे सुने गये अत्याचारों के समान ही पीड़ित होती तो यहाँ पर इतनी आबादी, इतनी अच्छी खेती और इतना उद्योग धन्धा देखने में कदापि न आता। लेकिन कल की घटनाओं ने यह

---

* १८८२ की राजनैतिक विवरण का परिशिष्ट पृ० ३६-३७।

मानने के लिए कारण दे दिया कि यहाँ पर काफ़ी कुशासन और अराजकता है।

वहाँ पर हमने सर्वत्र सभ्य और भले स्वभाव के आदमी पाये। वे हमारे लिए अपनी गाड़ी और हाथी आदि सड़क से एक ओर करके हमारे जाने के लिए रास्ता ख़ाली कर देते थे। और हमारा आतिथ्य सत्कार तो उन्होंने इतना अच्छा किया, इतना अधिक स्थान हमें मिलता था जितना लण्दन में दस विदेशियों को भी मुश्किल से मिला होगा। यहाँ के वर्त्तमान शासक साहित्य और तत्वज्ञान के प्रेमी हैं।

"सादतअली स्वयं एक बड़े बुद्धिमान और गुणी आदमी थे। व्यापार की ओर उनकी विशेष रुचि थी और उसके संपादन के लिए काफ़ी योग्यता प्राप्त कर चुके थे। परन्तु अपने जीवन के अन्तिम काल में दुर्भाग्यवश उन्हें शराब पीने की आदत पड़ गई थी। परन्तु फिर भी उनके अधीन प्रदेश की भूमि खूब उपजाऊ थी, आबादी ६० साठ लाख थी, ख़ज़ाने में बीस लाख से अधिक रुपया नक़द था. अर्थ-विभाग सुव्यवस्थित था, किसान लोग सन्तुष्ट और सुखी थे। दिखाने के लिए कुछ सिपाहियों और पुलिस के अतिरिक्त कोई फौज़ वग़ैरह भी न थी। प्रत्येक वस्तु पर दृष्टि पात करने से प्रतीत होता था कि यहाँ पर सुशासन के कारण प्रजा सुखी और सम्बद्ध है।

"बादशाह का यह कथन बिलकुल सत्य था कि उसके प्रदेश में खेती अत्यन्त उन्नतावस्था में है। मैं भी उनके इस कथन की सत्यता का साक्षी हूँ। मुझे उनके प्रदेश में खेती को इतनी उन्नतावस्था में देखने की आशा तो कदापि न थी। लखनऊ से

लेकर मान्दी तक, (?) जहां पर बैठा हुआ मैं यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, खूब खेती होती है और जन-संख्या उतनी ही अधिक है जितनी कि कम्पनी के अधीन अनेक प्रदेशों में। इन सब बातों को देखते हुए मुझे यह संदेह करना ही पड़ता है कि अवध की प्रजा के कष्टों और अराजकता को बढ़ा चढ़ा कर लिखा गया है।*

"स्वाध्याय की ओर उनकी विशेष रुचि थी; और जहाँ तक पूर्वीय साहित्य और तत्वज्ञान का सम्बन्ध है, वे एक बड़े विद्वान समझे जाते हैं। यंत्र विद्या (Mechanics) तथा रसायन शास्त्र की ओर भी उनका अधिक झुकाव है।

"हमारे जेम्स प्रथम की भाँति इन्हें न्याय-प्रिय और रहम-दिल बताया जाता है। जिन लोगों की उनके पास तक पहुँच है उन सब को वे बड़े प्रिय हैं। उन्होंने रक्त-पात या अत्याचार पूर्ण कोई काम कभी भी नहीं किया। इतना ही नहीं, लोगों का मत है कि, उनके जानते हुए भी किसी दूसरे ने भी कोई ऐसा काम नहीं किया। खर्च करने में वे मितव्ययी नहीं थे, प्रजा तक उनकी पहुँच नहीं थी; अपने कृपा पात्रों में उनका अन्ध-विश्वास था, मिलने जुलने के भिन्न-भिन्न प्रकार के ढंग और विशेषाधिकारों की एक बुरी लत उनमें पड़ गई थी. परन्तु यह बात कोई अस्वभाविक नहीं थी, यही उनकी बुराइयाँ और भूलें हैं।"

लार्ड हैस्टिंगस् ने उन्हें एक ईमानदार, दयाशील और साधारण तथा उन्नत विचार वाला नरेश बताया है। इसी विश्वसनीय पुरुष ने देशी नरेश के अधीन काल में. भरतपुर की सम्पन्नावस्था के विषय में लिखा है :—

---

* P. 49

"इस प्रदेश में यद्यपि जंगलात का अभाव है, परन्तु फिर भी इधर-उधर इतने वृक्ष दिखाई पड़ते हैं कि जितने हमने पिछले बहुत दिनों से नहीं देखे। यद्यपि यहाँ की भूमि रेतीली है और खिचाई सिर्फ कुओं से ही होती है लेकिन यहाँ के खेत उतने ही अच्छे जुते हुए और सिंचे हुए हैं जितने कि मैंने हिन्दुस्तान में दूसरी जगहों पर देखे हैं। इस समय जो फसल खेतों में खड़ी हुई है वह निहायत अच्छी है। कपास की फसल यद्यपि समाप्त हो चुकी है, परन्तु देखने से पता चलता है कि मेह बहुत अच्छी हुई होगी। सम्पत्ति के निश्चित चिह्न भी यहाँ मुझे देखने को मिले। मैंने खाँड़ के कई कारखाने देखे, बड़े-बड़े खेतों को देखा जिनमें से उसी समय गन्ने कट चुके थे। हिन्दुस्तान में यह रिवाज है कि किसान लोग आम रास्तों से जितना बन सके, उतना ही अधिक दूर रहते हैं। जिसके कारण वे मुसाफिरों और चोरों द्वारा दिये जाने वाले अनेक प्रकार के कष्टों से बच जाते हैं। परन्तु यहाँ पर मैंने इसके बिलकुल ही विपरीत पाया। गेहूँ और सरसों की हरी-हरी फसल के बीच में होकर पतली-पतली पगडंडिया मैंने देखीं। इन पगडंडियों को चीर कर जाते हुए पानी के बराह दिखाई दिये जिनमें होकर खेत की क्यारियों में पानी जाता था।"

"आबादी तो अधिक दिखाई नहीं दी; परन्तु जिन गाँवों को हमने देखा वे बाहर से देखने पर अच्छी दशा में दिखाई पड़ते थे, और मकानों की मरम्मत की हुई थी। सारा दृश्य उद्योग-धन्धे से परिपूर्ण तथा ऐसा सुहावना था कि जिसके देखने की मुझे राजपूताने में तो बिलकुल ही आशा न थी। रुहेलखण्ड

के दक्षिणी भाग से प्रस्थान करने के पश्चात् कम्पनी के प्रदेशों में देहातों की जिस दशा का मैंने अवलोकन किया था, उससे यहाँ की अवस्था कहीं अधिक उन्नत थी. जिससे मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि या तो यहाँ का राजा एक आदर्श और पितृवत् शासक है, और या फिर अंगरेजी प्रदेशों में शासन-पद्धति किसी न किसी रूप में ऐसी है, जिससे कि देशी नरेशों के मुक़ाबिले में, अंगरेजी शासन, हिन्दुस्तान की उन्नति और सुख के लिए कुछ कम अनुकूल है।*

सतारा के प्रथम नरेश श्री प्रतापसिंह के एक उच्च चरित्र के शासक होने तथा उनके प्रदेश की सम्पन्नावस्था के विषय में स्वयं अंग्रेजी सरकार का यह प्रमाण हमारे पास है।

सतारा का राज्य

"हमारी सरकार द्वारा, समय समय पर हमें जो समाचार मिलते रहे हैं उन्हें पाकर हमें बड़ा संतोष हुआ है कि परमात्मा ने आपको जिस उच्चासन बिठाकर, आपकी प्रजा को भलाई और रक्षा का जो कर्त्तव्य-भार सौंपा है, उसे आप एक आदर्श नरेश की भांति पूरा कर रहे हैं।

"श्रीमान् जिस उच्चासन पर विराजमान हैं उसी के अनुरूप श्रीमान का व्यवहार भी रहा है, और उससे श्रीमान् के प्रदेश की समृद्धि और प्रजा के सुख, आनन्द की बराबर वृद्धि ही हो रही है। आपके इस बुद्धिमत्तापूर्ण और अनवरत उद्योग से, आपके प्रदेश और प्रजा की जो भलाई हुई है, उससे आप के

* Bishop Heber "Journal" Vol II P. 361

चरित्र की उच्चता का पता चलता है और साथ ही इससे हमारे हृदय में एक अभूतपूर्व आनन्द और संतोष की भावना का संचार हुआ है। आपने अपने खर्च से, सार्वजनिक हित के अनेक कार्य्य करके जिस उदारता का परिचय दिया है, उससे हिन्दुस्तान के नरेशों और प्रजा में आप की और भी प्रशंसा हुई है। जिसके कारण आप हमारी सराहना, आदर, और प्रशंसा के भाजन बन गये हैं।

"इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कोर्ट आफ़ डायरेक्टर्स ने, सर्व सम्मति से आपको एक तलवार भेजने का निश्चय किया है। यह तलवार आपको बम्बई की सरकार द्वारा भेंट की जायगी। हमें आशा है कि आप हमारी इस भेंट को आपके प्रति हमारे महान आदर और श्रद्धा का चिन्ह समझ कर प्रसन्नता के साथ स्वीकार करेंगे।"

इस प्रकार जब कि एक ओर तो इस नरेश को उसके प्रदेश की समृद्धि तथा उसकी प्रजा के सुख के लिए बधाई दी जा रही थी, तो दूसरी तीन करोड़ भारतवासियों की दशा, जो लगभग एक एक सौ वर्ष तक अंग्रेज़ी शासनान्तर्गत रह चुके थे, एक विश्वस्त साक्षी ने इस प्रकार लिखी है।—

"इस सत्य का प्रतिवाद या खण्डन करने का साहस कभी किसी ने नहीं किया कि बङ्गाल की इतनी दुःखद और पतितावस्था है जितनी कि किसी की हो सकती है। उनके रहने की

---

*Letter of the court of Directors Far, pa. A. D, 1843 Ko 469 p. 1368

झोंपड़ियाँ इतनी निकृष्ट हैं कि वे किसी कुत्ते के रहने के योग्य भी नहीं समझी जा सकतीं। उनके बदन चिथड़ों से ढके हुए हैं और अधिकतर लोग अविराम परिश्रम करने पर भी एक वक्त का ही भोजन पैदा कर पाते हैं! बङ्गाल की प्रजा जीवन के साधारण सुखों से भी वंचित है। हमारे इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि यदि कोई उन किसानों को जो अपने खेतों में तीस चालीस लाख की फसल हरसाल पैदा करते हैं, वास्तविक स्थिति से परिचित होगा, तो उसे जान कर उसकी आत्मा कांप उठेगी।*

अब दो में से एक बात अवश्य है। या तो ब्रिटिश सरकार को बंगाल निवासी इस भयावनी हालत में मिले। और या फिर अंग्रेजी राज्य ने ही उन्हें इस दशा को पहुँचा दिया। अगर उनकी यह दशा पहले ही से थी तो अंग्रेजी सरकार एक शताब्दी तक क्या करती रही जिससे कि वह उन्हें इस दुरवस्था से न निकाल सकी? और अंग्रेजी राज्य में ही वे इस हीनावस्था को प्राप्त हुए तो सरकार इस परिणाम की भीषणता से अपने आप को कैसे निर्दोष साबित कर सकती है? हमने गवर्नर-जनरल लार्ड कार्नवालिस को यह स्वीकार करते हुए देखा है कि उनके समय में, जिसे साठ वर्ष हो गये "बंगाल की प्रजा बड़ी शीघ्रता से घोरतम गरीबी और दुःखदावस्था को प्राप्त होती जा रही है।" हमारे पास जो कागज़ात हैं उनसे हमें यह पता चलता है कि गवर्नमेंट को "दुनिया मे सब से अधिक धनवान संघ" होना चाहिए था जैसा कि लार्ड क्लाइव ने वादा किया था। परन्तु बङ्गाल प्रदेश हमारे

---

* Marshman, Friend of India, April 1st 1851

हाथ में आते ही सरकारी ख़ज़ाने में एक पाई भी नहीं रही !*
अकबर से लेकर मीरजाफ़र के ज़माने तक (सन् १८३७ तक)
प्रजा से प्राप्त कर की रकम तथा प्रजा पर कर लगाने की पद्धति
में बहुत थोड़ा अन्तर रहा है। परन्तु उसके (मीरजाफ़र के)
सिंहासनासीन होने के बाद ही ज़मीन पर लगान खूब बढ़ा दिया
गया और लोगों से खसोट लेने की पद्धति पहले से कई गुना
अधिक कर दी गई। कारण कि एक तो नवाब मीरजाफ़र को
देहली के सम्राट को हरसाल एक निश्चित रक़म देनी पड़ती
थी और उसे हमें भी वह रक़म देनी पड़ रही थी जिसके देने
का उसने वायदा किया था। सन १७६५ से १७९० तक हमने
इसके अतिरिक्त कर को वसूल करने की नीति को बराबर जारी
रक्खा। इस लिए हमारे कर वसूल करने की पद्धति में बराबर
प्रयोग और परिवर्तन ही होते रहे। और हम इन परिवर्तनों से
अनुभव ही प्राप्त करते रहे। लोग बहुत सी रक़म अदा ही नहीं
कर पाते थे। कारण कि सारा देश निर्धन और खोखला हो
गया था।

अंगरेज़ी राज्य की नयी देन

गवर्नर लार्ड हेस्टिंगस् ने कहा था कि "हमारे शासन-काल
में एक नई सन्तति पैदा हो गई है। हमारे शासनान्तर्गत पैदा
हुई सन्तति में मुकदमेबाज़ी इतनी बढ़ गई है कि हमारे न्याया-
लय उतने मुक़दमों का न्याय करने में असमर्थ हैं। लोगों का
नैतिक चरित्र भी बहुत गिर गया है। अगर हमारी शासन-पद्धति

---

* Vansittart's Narrative of Events in Bengal.

में यह पाया जाय कि हमने यहाँ के लोगों के नैतिक या धार्मिक बन्धनों को ढीला कर दिया है, या हमारे कुछ व्यक्तियों ने यहाँ की पुरानी संस्थाओं के प्रभाव को नष्ट कर दिया है लेकिन उनके स्थान पर जनता को पतन से रोकनेवाला कोई प्रतिबन्धक नहीं लगाया; और मानव-स्वभाव के अप्रतन विकारों को खूब ढील दे दी है, तथा खानगी लोकमत या निन्दा के सम्पर्क द्वारा होनेवाले लाभ से भी लोगों को हमने वंचित कर दिया है, तो हम यह स्वीकार करने को वाध्य हैं कि हमारे क़ानूनों ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जो हम से पुकार पुकार कर कह रही है कि हमें शीघ्र ही इस भयंकर बुराई का तत्कालिक इलाज कर देना चाहिए।"※

हमारी न्याय-व्यवस्था ने यहां के लोगों के चरित्र पर जो प्रभाव डाला उसके सम्बन्ध में यह एक गवर्नर जनरल का फैसला है। लोगों के जानमाल की रक्षा के विषय में भी इस समय वही हालत है जो अबसे पचास वर्ष पहले थी। आजकल भी इतना अन्धेर और अव्यवस्था है कि कलकत्ते के साठ-सत्तर मील इर्द-गिर्द कोई भी सम्पत्तिवान मनुष्य रात को सोने के लिए चारपाई पर जाते समय यह विश्वास नहीं करता कि सुबह होने से पूर्व ही उसका माल-टाल उससे लूट न लिया जायगा।"

यह बात हम एक अत्यन्त विश्वसनीय प्रमाण के आधार पर कहते हैं।※ हमारे पास इन सब प्रमाणों के होते हुए भी

※ Lord Hastings Minute in Parliamentary papers., 1827. p. 157.

कि हमारी नियत और उद्देश पवित्र थे, गवर्नर-जनरल लार्ड डब्ल्यू बेन्टिक शब्दों में, हमारा शासन, कर, न्याय और पुलिस आदि सब विभागों में असफल रहा है।" और हम उन्नति की शेख़ी मारते हैं—भारतवर्ष को उन्नति बनाने की !

इन प्रश्नों का उद्देश यह है कि हम उन लोगों की तरफ से जो स्वयं बोल नहीं सकते, यह बता दें कि वे लोग इतने काले नहीं हैं, जितना कि हमने उन्हें चित्रित किया है; और न हम ही उतने सफेद हैं जैसा कि हम अपने को बताते हैं। उनकी गवर्नमेंट और संस्थायें भी उतनी दूषित नहीं हैं; और न हमारी ही उतनी पूर्ण हैं जैसा कि हमारा दावा है। हमने बड़े-बड़े पोथों में "भारत की उन्नति का इतिहास" जो लिखा है उसके मानी सिर्फ़ यही हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दुस्तान की ईसाई सरकार पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी की मुसलमान या हिन्दू सरकारों से अच्छी है। यह हमारी कोरी बहानेबाजी है। अपनी इस कोरी डींग का समर्थन अंगरेजों से पहले भारत का शासन करने वालों के चरित्र और कार्य्यों की निन्दा तथा अपने कार्य्यों की खूब बढ़ा-चढ़ा प्रशंसा करके ही हम करते हैं। परन्तु इतना करने पर भी यह संदेह तो पूर्णतया बना ही रहता है कि आया भलाई का पलड़ा वास्तव में हमारी ही ओर झुकता है या नहीं।

---

* Friend s of India, 28 th August 1851.

देशी नरेशों तथा अंग्रेजी शासन के विषय में कुछ सम्मतियां इस प्रकार हैं :—

कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स—अपने ८ फरवरी सन् १७६४ ई० के एक पत्र में, जो बङ्गाल के लिए लिखा गया था. लिखता है:—

"यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सारे झगड़े की एक बहुत बड़ी जड़ कंपनी के नौकरों तथा उनके गुमाश्ताओं का अनुचित रूप से, स्वच्छन्दता पूर्वक निजी व्यापार करना है।

"हिन्दुस्तान के आन्तरिक व्यापार के सम्बन्ध में आप के विचारों को जान कर हमारे सम्मुख अत्यन्त निर्दयतापूर्ण अत्याचार का दृश्य उपस्थित हो गया है।"

"जिस अव्यवस्था और अशान्ति को हम देख रहे हैं वह क्योंकर पैदा हुई ? हमारी लूट खसोट और विलासिता से।"

लार्ड क्लाइव—के थोमास रो को लिखित पत्र से, जो उन्होंने मद्रास ता० १७ अप्रैल सन् १७६५ ई० को लिखा था।

"बङ्गाल में अंग्रेज़ लोग, संधियां भंग करने, प्रजा पर घोर अत्याचार करने और अपने को मालामाल करने के लिए एक गुट्ट बना लेने के अपराध के अपराधी हैं।"

२६ अप्रैल सन् १७६५ को बंगाल के लिए लिखे गये कोर्ट आफ डाइरेक्टरस् के पत्र से।

यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं कि लोगों की धन-तृष्णा वैसे साधन मिल जाने पर अपने को सन्तुष्ट करे और आपकी शक्ति के कल–पुर्जे अपने पद के द्वारा लाभ उठावें, और जब साधारण रिश्वत आदि से उनका पेट न भरे तो लोगों से ज़बर्दस्ती भी छीन झपट लें। उच्च-पदाधिकारियों को इस प्रकार लूटते-खसोटते देखकर उनके मातहत भी उनसे क्यों पीछे रहने लगे ? यह बुराई इतनी संक्रामक थी कि दीवानी और फौजी महकमों में फैलते इसे देर न लगी। यहां तक कि मुंशी, अर्दली और स्वतंत्र व्यापारी तक इसके कुप्रभाव से न बच सके। अभी तक खतरा गया नहीं है, विलासिता, रिश्वतखोरी, लोभ और लूट-खसोट के रूप में आपके भयंकर शत्रु अब भी मौजूद हैं।

३० सितम्बर सन् १७३५ ई० को कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स को लिखे गये लार्ड क्लाइव के पत्र से।

हमें बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि कुछ लोगों के दुराचार के कारण अंग्रेजों का नाम यहां बड़ा ही घृणित समझा जाने लगा है। हमारी यह [illegible] इच्छा थी कि हम अपने शासन के स्वरूप को, जो रिश्वत खोरी के लिए इतना बदनाम है और सारा का सारा महकमा बुरी तरह से धनलोलुप बना हुआ है सिंहावलोकन न करें।

३. जनवरी सन् १७६६ के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के बङ्गाल से भेजे हुए पत्र से।

समस्त अंगरेज बस्ती में जो सार्वजनिक पतन के दृश्य पाये जाते, हमारे नौकरों में जो अत्याचार और अनीति फैली हुई हैं, उसे देखकर तो हमें बड़ा ही अफसोस हुआ। अरे ! संसार के किसी देश में ऐसा निर्दय अत्याचार नहीं हुआ होगा जिसके द्वारा उन्होंने सम्पत्ति की वे राशियां लूट लूट कर इकट्ठी की थीं।

—कोर्ट ऑफ डायरक्टर्स का पत्र १७ मई १७६६

"पिछले कारनामों का यदि सिंहावलोकन किया जाय तो ऐसे ऐसे रहस्य प्रकट होंगे जिनको सुनकर लोगों के दिल दहल जायँगे, अंग्रेज़ जाति के नाम पर कलङ्क का टीका लगेगा और अनेक बड़े बड़े और प्रसिद्ध परिवारों की इज़्ज़त धूल में मिल जायगी"। लार्ड क्लाइव

८ सितम्बर सन् १७६६ के जार्ज उल्व को लिखे गये पत्र से।

यदि हमारी शासन पद्धति का परिणाम यह हो कि एक समस्त राष्ट्र इससे पतित हो रहा है, तो उससे अधिक अच्छा तो यही हो कि हमें हिन्दुस्तान से बिलकुल निकाल दिया जाय। *

अगर इस आन्तरिक अशान्ति और गड़बड़ी से हम किसी प्रकार अपने को सुरक्षित भी बनालें और हिन्दुस्तान को निर्विघ्नता पूर्वक अपने अधीन बनाये रखने में हम समर्थ हो सकें, फिर भी मुझे तो बड़ा सन्देह है कि, देशी नरेशों के शासन-काल में यहाँ के लोगों की जैसी दशा थी हमारे शासनान्तर्गत उनकी अवस्था उससे अच्छी हो सकेगी, या नहीं?

अतः! अंग्रेजों द्वारा भारतवर्ष की विजय के परिणाम स्वरूप इस देश की उन्नति के बजाय सारे देश का पतन होगा। संसार में ऐसी किसी विजय का दूसरा उदाहरण आपको न मिलेगा जहां विजेताओं ने देश के निवासियों को शासन-यंत्र से एक दम इतना दूर रक्खा हो। देशी राज्यों में चाहे कितनी ही अव्यवस्था और अशान्ति हो? पर वहां प्रत्येक व्यक्ति को अपने को ऊँचा उठा लेने के लिए मैदान खुला हुआ है। इसीसे वहां के लोगों में एक दूसरे से बढ़ जाने की प्रति-स्पर्धा अथक परिश्रम, साहस-वृत्ति और स्वतंत्रता की भावना दिखाई पड़ रही है। हमारे अधीन जिस पतितावस्था और गुलामी में भारतीयों को रहना

---

* India Reform Tracts Tract Vi p. 112

पड़ता है उससे देशी राज्यों के निवासी भारतीयों की हालत कहीं अच्छी है।"
सर थामस मुनरो

———

"भारतीय प्रजा पर मुनासिब कर लगाना तथा न्याय की उचित व्यवस्था कर देना कुछ भी नहीं है, यदि हम उसके चरित्र को उन्नत बनाने का उद्योग नहीं करते। कारण कि एक विदेशी सत्ता में तो स्वयं ही कुछ ऐसी बातें होती हैं, जिनके कारण लोगों की प्रवृत्ति पतन की ही ओर झुकती जाती है और जिसके कारण उन्हें डूबने से बचाना ज़रा टेढ़ी खीर है। यह एक पुरानी कहावत है कि जो अपनी स्वतंत्रता को खो बैठता है, वह अपने आधे गुणों से भी हाथ धो बैठता है। यह बात जिस प्रकार व्यक्तियों के लिए सत्य है, उसी प्रकार जातियों के लिए भी। किसी आदमी के पास यदि कुछ भी सम्पत्ति न हो, तो उससे उसका उतना पतन नहीं होता, जितना कि एक उस विदेशी सरकार के हाथों में, जिसमें कि प्रजा का कुछ भी हाथ नहीं है, एक राष्ट्र की सम्पत्ति सौंप देने से सारी जाति का पतन होता है। जिस प्रकार एक गुलाम स्वतंत्र मनुष्य के सम्मान वकृत और विशेषाधिकार खो बैठता है, उसी प्रकार एक दास जाति भी अपने उस मान और उन विशेषाधिकारों को खो बैठती है, जो प्रत्येक जाति को उसके अधिकार के रूप में प्राप्त हैं। उसको अपने ऊपर कर लगाने का अधिकार नहीं रहता, अपने लिए वह क़ानून भी नहीं बना सकती, और देश की शासन-व्यवस्था में उसका कोई हाथ नहीं रहता।"

अपनी जाति के नरेश की निरंकुश सत्ता से नहीं, बल्कि विदेशियों की गुलामी से एक जाति की राष्ट्रीय भावना और जातीय चरित्र नष्ट होते हैं। जब किसी जाति के अन्दर अपना राष्ट्रीय चरित्र बनाये रखने की क्षमता नहीं रहती, तो उसके पास से सार्वजनिक और घरेलू जीवन के उच्चतम गुणों की [illegible] भी चली जाती है। जिसके कारण घरेलू

चरित्र के साथ साथ सार्वजनिक चरित्र भी नष्ट होजाता है।" सर थामस मनरो (Indian Spectator Fabruary. 9.h. 1899)

"देश के साधनों को समूल नष्ट कर देने के लिए यह एक ऐसी लूट-खसोट है, जिसकी पूर्त्ति के लिए कुछ भी नहीं किया गया। जातीय उद्योग धन्दे का नसों से यह उसका जीवन-रक्त चूस लेना है। और उसके स्थान पर कोई और दूसरा ऐसा काम नहीं किया गया जिससे कि जीवन तो बना रहता।" यह मिल द्वारा लिखित "भारतवर्ष का इतिहास" नामक पुस्तक के आधार पर जे० विल्सन ने अंग्रेजी शासन से भारत की अवस्था पर जो प्रभाव पड़ा उसके विषय में लिखा है।

"हिन्दुस्तान के सुख और शान्ति के दिन तो बीत गये। किसी समय में उसके पास जो विपुल सम्पत्ति थी उसका अधिकांश भाग खींच लिया गया। लाखों भारतवासियों के हितों को मुट्ठी भर अंग्रेजों के लाभ के लिए बलिदान कर दिया गया और हमारे कु शासन ने भारत वर्ष की सारी शक्तियों को कुचल डाला। इस देश और यहां के निवासियों को हमारी शासन-पद्धति ने धीरे धीरे बिल्कुल ही कंगाल बना दिया है।"

"अंग्रेजी सरकार ने इस देश में लोगों को पांस जाने वाली लूट-खसोट की है, जिसके कारण देश और यहां के निवासी इतने दरिद्र होगये हैं कि जिसके समान संसार में कोई भी देश और जाति दरिद्र नहीं मिल सकती।"

"अंग्रेजों का मुख्य सिद्धान्त सारे भारतवासियों को हर प्रकार से अपने लाभ के लिए अपने हाथ की एक कठ-पुतली बना लेना रहा है। अगर यहां के लोगों की भलाई करना हमारा उद्देश्य होता, तो हमारा कार्य्य क्रम बिलकुल ही भिन्न होता और उसका परिणाम भी मौजूदा परिणाम के बिलकुल ही विपरीत निकलता। मैं इस बात को बार बार दुहराता हूं कि लोग हमें घृणा की दृष्टि से इस लिए नहीं देखते कि

हम विदेशी और भिन्न धर्मावलम्बी हैं। अपने प्रति उनकी ऐसी भावनायें बना देने के लिए हमें अपने ही को धन्यवाद देना चाहिए।
—१८३७ में बङ्गाल सिविल सरविस के मि० फ्रेडरिक जान शोर

"जो लोग भारतवर्ष से भलीभांति परिचित हैं उन सबकी एकमत से यह राय है कि अनेक सुशासित छोटे-छोटे देशी राज्य हिन्दुस्तान की प्रजा की राजनैतिक तथा नैतिक उन्नति के लिए कहीं अधिक उपयोगी हैं। माननीय महानुभाव (मि० लेंग) सरकारी पक्ष का समर्थन करते हुए ऐसा समझते हैं कि अंग्रेज़ी प्रदेश में सब बातें अच्छी हैं और देशी नरेशों के प्रदेश में सब बातें बुरी हैं। अपने पक्ष के समर्थन में वे अवध का उदाहरण पेश कर सकते हैं, परन्तु मुझे तो सन्देह है कि अवध की स्थिति सारे भारतवर्ष की वर्त्तमान अवस्था का एक साधारण दृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित कर सकती है। अगर देशी सरकार के कु-शासन के प्रमाण स्वरूप अवध का उदाहरण पेश किया जा सकता है तो उड़ीसा का अकाल, जिसकी रिपोर्ट कुछ ही दिन में प्रकाशित हो जायगी; अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध पेश किया जा सकता है, जो अवध की अवस्था से कहीं अधिक भयानक है। देशी सरकारों की भांति अंग्रेज़ी सरकार हिंसा और अनियमितता के लिए कभी भी दोषी नहीं बनी। परन्तु उसके अपने कुछ अपराध हैं, जो उद्देश की दृष्टि से तो कहीं अधिक निर्दोष हैं, परन्तु उनका परिणाम अत्यन्त भयानक है।

बड़े परिश्रम के साथ बनाई हुई हमारी भड़कीली शासन-पद्धति और देशी भद्दी सरकारों के कार्य्यों और उनके परिणामों की तुलना की जाय तो पता चलेगा कि लोगों के लिए देशी पद्धति कहीं अधिक लाभदायक है।"

लार्ड सैलिस्बरी के पार्लियामेंट में दिये गये भाषण से।

"भारतवर्ष की कष्ट गाथा और भी बढ़ जाती है। जहाँ से इतना कर, बिना किसी सीधे मुआवजे के ढोलिया जाता है। क्योंकि हिन्दुस्तान का तो रक्त हमें चूसना ही है।"

लार्ड सैलिसबरी

सन् १८३३ के कानून के पास होते ही गवर्नमेण्ट उसके अनुसार काम करने से बचने लगी। उन्हें रोकने और धोखा देने इन दो बातों में से हमें एक पसन्द करनी थी; अतः हमने उस मार्ग का अवलम्बन किया जो कम से कम सीधा था।—क्या हमारी जान बूझ कर और स्पष्ट रूप से की गई इतनी धोखे बाज़ियां उस क़ानून को रद्दी की टोकरी का रद्दी क़ाग़ज नहीं बनातीं ?——

लार्ड लिटन वाइसराय १७७८

राष्ट्र को चूसना

(स्व० दादा भाई नौरोजी के इंग्लैंड में दिये गये एक भाषण से)

हमको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि राष्ट्र को चूसना किसे कहते हैं। यह बिलकुल ठीक है कि जब राज्य चलाया जायगा तो लोगों को कर देना ही पड़ेगा। परन्तु एक मनुष्य पर कर लगाने और उसका खून चूसने में बड़ा अन्तर है। आप, इंग्लैंड निवासी लोग, अब प्रति वर्ष १५ शिलिंग या कुछ अधिक कर प्रति मनुष्य देते हैं। हम, हिन्दुस्थान में तीन या चार ही शिलिंग प्रति मनुष्य प्रति वर्ष देते हैं। इससे सम्भव है कि आप हमें दुनियां में सब से कम कर देने वाले मनुष्य समझें। लेकिन, बात यह नहीं है; हमारा भार आप से दूना अधिक है। आप लोग जो कर देते हैं वह कर राज्य के हाथ में जाता है, जिसे राज्य कई तरीकों से देश को वापिस कर देता है जैसे व्यापार में उन्नति करके स्वयं लोगों को लौटा कर। आपके धन में घटी नहीं होती है; वह केवल स्थान परिवर्तन करता रहता है। जो कुछ आप देते हैं। वह आप किसी न किसी रूप में फिर वापिस भी पाते हैं। पर घाटे का अर्थ है

उनकी शक्ति का नाश। फर्ज कीजिए कि आप प्रति वर्ष सौ करोड़ मुद्रा कर देते हैं और राज्य उसे इस प्रकार इस्तेमाल करता है कि कुछ भाग ही देश को लौटता है, और शेष देश के बाहर चला जाता है। ऐसी दशा में आप चूसे गये और आपके जीवन का कुछ भाग बाहर गया। ख्याल कीजिए कि १०० करोड़ कर में से केवल ८० करोड़ ही आपको वेतन, व्यापार और शिल्प द्वारा वापिस मिलते हैं। ऐसी दशा में आप २० करोड़ प्रति वर्ष खो देते हैं। दूसरे वर्ष आप उतने ही निर्बल हो जावेंगे, और इसी प्रकार प्रति वर्ष आप निर्बल होते जावेंगे। मनुष्यों पर कर लगाने और उन्हें चूसने में यही अन्तर है। मान लीजिए कि आप पर फ्रांस के कुछ लोग राज्य करते हैं, और वे उन सौ करोड़ में से दस या बीस करोड़ प्रति वर्ष ले लेते हैं, तो यही कहा जायगा कि वे आपको चूसते हैं। राष्ट्र अपने जीवन का कुछ भाग प्रति वर्ष नष्ट करता रहेगा। भारत किस प्रकार चूसा गया ? आपके लिए मैंने फ्रांस निवासियों शासकों का अनुमान किया था। वैसे हम हिन्दुस्तानियों पर आप राज्य करते हैं। आप लोग हमारे व्यय और करों का इस प्रकार प्रबन्ध करते हैं कि हम जो सौ करोड़ मुद्राएं कर के रूप में देते हैं वे सौ की सौ हमें कभी वापिस नहीं मिलतीं। केवल ८० करोड़ के लगभग ही वापिस मिलती है। देश की आय से प्रति वर्ष २० करोड़ मुद्राएं लूटी जा रही हैं। × × क्या यहां पर कोई ऐसा आदमी निकल सकता है, जो भारी कर देते हुए इस बात में सन्तुष्ट रहे कि देश के शासन में उसका कोई हाथ न रहे पर हमारा यही हाल है। देश के शासन में हमारा कोई हाथ नहीं। भारत की गवर्नमेंट का सब प्रकार की आमदनी के ज़रियों पर अधिकार है और वह मनमाना व्यवहार करती है। उनकी प्रत्येक बात मान लेने और लुटते रहने के सिवा हमारे पास कोई चारा नहीं है। इन १५० वर्ष से ब्रिटिश गवर्नमेंट इसी उसूल से राज्य कर रही हैं। परिणाम क्या हुआ ? मैं लार्ड सेलिसबरी के ही शब्द फिर उद्धृत करता हूं, "क्योंकि

हिन्दुस्तान का रक्त चूस लिया गया है, इसलिए नश्तर उन स्थानों पर लगाना चाहिए जहां बहुत, पर्याप्त रक्त मौजूद हो, न कि ऐसे स्थानों में जो कि उसकी कमी के कारण जर्जर हैं।" लार्ड सेलिसबरी ने बतलाया है कि भारत की सब से बड़ी आबादी—कृषक समुदाय, रक्त की कमी के कारण निर्बल हैं। यह २५ वर्ष पूर्व का कथन है और उसके बाद इन २५ वर्षों में उनका रक्त और भी चूस लिया गया। परिणाम यह हुआ कि वे इतने चूस लिये गये हैं कि मृत्यु के मुख में पहुँच चुके। क्यों? इसलिए कि हमारे धन का एक बहुत बड़ा हिस्सा यहाँ से साफ उड़ा लिया जाता है जो किसी रूप में वापिस नहीं किया जाता। यही रक्त चूसने का तरीका है। लार्ड सेलिसबरी खुद कहते हैं। हिन्दुस्तान की इतनी सारी आय बाहर भेज दी जाती है और उसके बदले में उसे कुछ नहीं दिया जाता। मैं आप से पूछता हूँ कि इन अकाल और प्लेग आदि में क्या कोई बड़ा रहस्य है? इस अनुचित राज्य शासन से भारत जितना खोखला हो गया है उतना कोई दूसरा देश कभी नहीं हुआ।

× × × ×

राज्य कर्मचारी बतलाते हैं कि हिन्दुस्तान पर उसकी ही भलाई के लिए शासन किया जाता है। वे कहते हैं कि वे करों से कोई लाभ नहीं उठाते। लेकिन यह बात गलत है। सच तो यह है, कि अभी तक हिन्दुस्तान पर वहां के निवासियों में कंगाली बढ़ाने के लिए शासन किया जा रहा है। क्या यह सदा जारी रह सकता है?

× × ×

इससे कुछ समय तक आप भले ही फल-फूल सकते हैं। लेकिन एक समय वह आयेगा जब आपको इस अनुचित शासन का प्रतिफल उठाना पड़ेगा। लार्ड सेलिसबरी के कथन के जो अंश मैंने उद्धृत किये उनसे भारत की वास्तविक अवस्था का पता चलता है। यह बात नहीं है कि अंग्रेज राज-नीतिज्ञों में लार्ड सेलिसबरी ने ही प्रथम बार इस बात की घोषणा

की है, बल्कि, सौ वर्ष से सभी विचारवान और बुद्धिमान अंग्रेज़ और राजनीतिज्ञ समय समय पर यही कहते रहे हैं कि भारतवर्ष बिलकुल खोखला और [illegible] हो गया है और अन्त में उसकी मृत्यु निश्चित है। ये अकाल इन्हीं भूल जाने के कारण में आये हैं।

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर.

स्थापना सन् १९२५ ई०; मूलधन ४५०००)

उद्देश्य—सस्ते से सस्ते मूल्य में ऐसे धार्मिक, नैतिक, समाज सुधार सम्बन्धी और राजनैतिक साहित्य को प्रकाशित करना जो देश को स्वराज्य के लिए तैय्यार बनाने में सहायक हो, नवयुवकों में नवजीवन का संचार करे, स्त्रीस्वातंत्र्य और अछूतोद्धार आन्दोलन को बल मिले।

संस्थापक—सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला (सभापति) सेठ जमनालालजी बजाज आदि सात सज्जन।

मंडल से—राष्ट्र-निर्माणमाला और राष्ट्र-जागृतिमाला ये दो मालाएँ प्रकाशित होती हैं। पहले इनका नाम सस्तीमाला और प्रकीर्णमाला था।

राष्ट्र-निर्माणमाला (सस्तीमाला) में प्रौढ़ और सुशिक्षित लोगों के लिए गंभीर साहित्य की पुस्तकें निकलती हैं।

राष्ट्र-जागृतिमाला (प्रकीर्णमाला) में समाज सुधार, ग्राम-संगठन, अछूतोद्धार और राजनैतिक जागृति उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहक होने के नियम

(१) उपर्युक्त प्रत्येक माला में वर्ष भर में कम से कम सोलह सौ पृष्ठों की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। (२) प्रत्येक माला की पुस्तकों का मूल्य डाक व्यय सहित ४) वार्षिक है। अर्थात् दोनों मालाओं का ८) वार्षिक। (३) स्थाई ग्राहक बनने के लिए केवल एक बार ॥) प्रत्येक माला की प्रवेश फ़ीस ली जाती है। अर्थात् दोनों मालाओं का एक रुपिया। (४) किसी माला का स्थायी ग्राहक बन जाने पर उसी माला की पिछले वर्षों में प्रकाशित सभी या चुनी हुई पुस्तकों की एक एक प्रति ग्राहकों को लागत मूल्य पर मिल सकती है। (५) माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होता है। (६) जिस वर्ष से जो ग्राहक बनते हैं उस वर्ष की सभी पुस्तकें उन्हें लेनी होती हैं। यदि उस वर्ष की कुछ पुस्तकें उन्होंने पहले से ही ले रखी हों तो उनका नाम व मूल्य कार्य्यालय में लिख भेजना चाहिए। उस वर्ष की शेष पुस्तकों के लिए कितना रुपिया भेजना चाहिये, वह कार्य्यालय से सूचना मिल जायगी।

सस्ती-साहित्य-माला के प्रथम वर्ष की पुस्तकें

(१) दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (महात्मा गांधी) पृष्ठ सं० २७२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।≤) सर्वसाधारण से ॥।)

(२) शिवाजी की योग्यता—(ले० गोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए० एल० टी०) पृष्ठ १३२ मूल्य ।=) ग्राहकों से ।)

(३) दिव्य जीवन—पुस्तक दिव्य विचारों की खान है। पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य ।=) ग्राहकों से ।) चौथी बार छपी है ।

(४) भारत के स्त्री रत्न—(पाँच भाग) इस में वैदिक काल से लगाकर आज तक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पतिव्रता, विदुषी और भक्त कोई ५०० स्त्रियों की जीवनी होगी । प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मू० १) ग्राहकों से ॥।) दूसरा भाग दूसरे वर्ष में छपा है। पृष्ठ ३२० मू० ॥।-)

(५) व्यावहारिक सभ्यता—छोटे बड़े सब के उपयोगी व्यावहारिक शिक्षाएँ । पृष्ठ १२८, मूल्य ।)॥ ग्राहकों से ≡)॥

(६) आत्मोपदेश—पृष्ठ १०४, मू० ।) ग्राहकों से ≡)

(७) क्या करें ? (टॉल्सटॉय) महात्मा गांधी जी लिखते हैं—"इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है । विश्व-प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा" प्रथम भाग पृष्ठ २६६ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)

(८) कलवार की करतूत—(नाटक) (ले० टाल्सटाय) अर्थात् शराबखोरी के दुष्परिणाम; पृष्ठ ४० मू० -)॥। ग्राहकों से -)।

(९) जीवन साहित्य—(भू० ले० बाबू राजेन्द्रप्रसादजी) काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग-पृष्ठ २१८ मू० ॥) ग्राहकों से ।=)

प्रथम वर्ष में उपरोक्त नौ पुस्तकें १६६८ पृष्ठों की निकली है

सस्ती-साहित्य-माला के द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

(१) तामिल वेद—[ले० अछूत संत ऋषि तिरुवल्लुवर] धर्म और नीति पर अमृतमय उपदेश—पृष्ठ २४८ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)॥

(२) स्त्री और पुरुष [म० टाल्सटाय] स्त्री और पुरुषों के परस्परिक सम्बन्ध पर आदर्श विचार—पृष्ठ १५४ मू०।=) ग्राहकों से ।)

(३) हाथ की कताई बुनाई [अनु० श्री रामदास गौड़ एम० ए०) पृष्ठ २६७ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)॥ इस विषय पर आई हुई ६६ पुस्तकों में से इसको पसंद कर म० गांधीजी ने इसके लेखकों को १०००) दिया है ।

(४) हमारे ज़माने की गुलामी (टाल्सटाय) पृष्ठ १०० मू० ।)

(५) चीन की आवाज़—पृष्ठ १३० मू० ।-) ग्राहकों से ≡)॥

(६) द० अफ्रिका का सत्याग्रह—(दूसरा भाग) ले० म० गांधी पृष्ठ २२८ मू० ॥) ग्राहकों से ।=) प्रथम भाग पहले वर्ष में निकल चुका है ।

(७) भारत के स्त्रीरत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ लगभग ३२० मू० ॥।-) ग्राहकों से ॥≡) प्रथम भाग पहले वर्ष में निकल चुका है ।

(८) जीवन साहित्य [दूसरा भाग] पृष्ठ २०० मू० ॥) ग्राहकों से ।≡) इसका पहला भाग पहले वर्ष में निकल चुका है ।

दूसरे वर्ष में लगभग १६५० पृष्ठों की ये ८ पुस्तकें निकली हैं

सस्ती-प्रकीर्ण-माला के प्रथम वर्ष की पुस्तकें

(१) कर्मयोग—पृष्ठ १५२, मू० ।=) ग्राहकों से ।)

(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा—पृष्ठ १२४ मू० ।-) ग्राहकों से ≡)॥

(३) कन्या-शिक्षा—पृष्ठ सं० ९४, मू० केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≡)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—पृष्ठ २६४, मू० ॥-) ग्राहकों से ।=)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—पृष्ठ २०८ मू० ॥) ग्राहकों से ।-)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्म्मा विद्यालंकार) भू० ले० पं० पद्मसिंहजी शर्मा पृष्ठ १७६, मू० ।≡) ग्राहकों से ।-)

(७) गंगा गोविन्दसिंह (ले० चण्डीचरणसेन) ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों और उनके कारिन्दों की काली करतूतें और देश की विनाशोन्मुख स्वाधीनता को बचाने के लिए लड़ने वाली आत्माओं की वीर गाथाओं का उपन्यास के रूप में वर्णन—पृष्ठ २८० मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)॥

(८) स्वामीजी [श्रद्धानंदजी] का बलिदान और हमारा कर्तव्य [ले० पं० हरिभाऊ उपाध्याय] पृष्ठ १२८ मू० ।-) ग्राहकों से ।)

(९) यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास [प्रथम भाग] यूरोप का इतिहास स्वाधीनता का तथा जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है। प्रत्येक भारतवासी को यह ग्रन्थ रत्न पढ़ना चाहिये । पृष्ठ ३६६ मू० ॥।=) ग्राहकों से ॥-)

प्रथम वर्ष में १७९२ पृष्ठों की ये ९ पुस्तकें निकली हैं

सस्ती-साहित्य-माला के प्रथम वर्ष की पुस्तकें

(१) दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (महात्मा गांधी) पृष्ठ सं० २७२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।≡) सर्वसाधारण से ॥।)

(२) शिवाजी की योग्यता—(ले० गोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए० एल० टी०) पृष्ठ १३२ मूल्य ।=) ग्राहकों से ।)

(३) दिव्य जीवन—पुस्तक दिव्य विचारों की खान है। पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य ।=) ग्राहकों से ।) चौथी बार छपी है।

(४) भारत के स्त्री रत्न—(पाँच भाग) इस में वैदिक काल से लगाकर आज तक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पतिव्रता, विदुषी और भक्त कोई ५०० स्त्रियों की जीवनी होगी। प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मू० १) ग्राहकों से ॥।) दूसरा भाग दूसरे वर्ष में छपा है। पृष्ठ ३२० मू० ॥|-)

(५) व्यावहारिक सभ्यता—छोटे बड़े सब के उपयोगी व्यावहारिक शिक्षाएँ। पृष्ठ १२८, मूल्य ।)॥ ग्राहकों से ≡)॥

(६) आत्मोपदेश—पृष्ठ १०४, मू० ।) ग्राहकों से ≡)

(७) क्या करें? (टॉल्सटॉय) महात्मा गांधी जी लिखते हैं—"इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्व-प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा" प्रथम भाग पृष्ठ २६६ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)

(८) कलवार की करतूत—(नाटक) (ले० टाल्सटाय) अर्थात् शराबखोरी के दुष्परिणाम; पृष्ठ ४० मू० -)॥। ग्राहकों से -)।

(९) जीवन साहित्य—(भू० ले० बाबू राजेन्द्रप्रसादजी) काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग-पृष्ठ २१८ मू० ॥) ग्राहकों से ।=)

प्रथम वर्ष में उपरोक्त नौ पुस्तकें १६६८ पृष्ठों की निकली है

सस्ती-साहित्य-माला के द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

(१) तामिल वेद—[लै० अछूत संत ऋषि तिरुवल्लुवर] धर्म और नीति पर अमृतमय उपदेश—पृष्ठ २४८ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)॥

(२) स्त्री और पुरुष [म० टाल्सटाय] स्त्री और पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध पर आदर्श विचार—पृष्ठ १५४ मू० ।=) ग्राहकों से ।)